Aug 73

255

• युक्रांद को प्रेमियों का आर्थिक अनुदान •

['युक्रांद' की जड़ों को सींचकर भगवत्-आनंद और प्रेम की वर्षा को जो घरों-घर पहुंचाने में हमारे सहगामी बने—युक्रांद परिवार उनका हृदय से ऋणी है।]

पिछले जून '७३ अंक में युक्रांद के प्रथम चार वर्षों की समाप्ति पर हमने प्रेमी-मित्रों को आर्थिक-अनुदान देने हेतु आह्वान किया था। हमारा सौभाग्य है कि हमें इस हेतु निम्न प्रेमी-मित्रों से यह अनुदान मिला है, आपका अनुदान भी शीघ्र हमें मिलेगा, ऐसी सुफल कामना के साथ :

१. श्री धीरजलाल अंबेलाल देसाई नंदुरबार (धूलिया, महा.) ५।-

२. साधु आनंद विनय २।-
३२२, उपरैनगंज, जबलपुर

३. श्री हीरेन्द्रप्रसाद शाह २५।-
गिरधारी शाह लेन, सूजागंज, भागलपुर-२

४. श्री बी. एस. बी. लाल राजालू (साधु प्रेमानंद भारती) १०।-
२३४/४, चिटनवीसगंज, छिदवाड़ा

५. श्री आत्माराम, बी.ए.एल-एल.बी. प्लीडर : डिस्ट्रिक्ट कोर्ट, लुधियाना १०।-

६. श्री मांगीलाल जी १०।-
स्वदेशी वस्त्र भंडार
श्योपुर कलां, मुरैना (म. प्र.)

७. श्री के.एल. पाटिल कलासपुरकर
संकट मोचन रोड
यवतमाल ५।-

८. श्रीमती लक्ष्मी मिश्र ५१।-
द्वारा : डा. रामकृष्ण मिश्र
प्रताप कालोनी, ग्वालियर-१

९. साधु सत्य प्रेम ५१।-
सी-८६, शास्त्री नगर, जोधपुर

१०. श्री लक्ष्मीलाल चौधरी ११।-
द्वारा : एस.के.जी. सुगर लि०
हथुआ, पो.आ. मीरगंज
सिवान (बिहार)

११. श्री भास्करलाल कश्यप १०।-
ग्राम व डाक : बरलाई जागीर
व्हाया—मांगल्या, इन्दौर

(शेष कवर पेज ३ पर)

भगवान रजनीश की सृजनात्मक युग क्रांति दर्शन की मासिक संकलन पत्रिका

अगस्त १९७३

युक्रांद

वर्ष – ५ अंक – ३ : ४

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
„ वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द

अगस्त '७३

— मानसेवी सम्पादक मण्डल —

अरविन्द कुमार

सुश्री डा. उर्मिला ✱ 'आकुल' राजेन्द्र

आलोक पाण्डे

व्यवस्थापक : स्वामी धर्म सरस्वती

अनुक्रमणिका

महावीर मेरी दृष्टि में	: ४ :	संक्षिप्त सं. : आकुल राजेन्द्र
क्या है भगवत् प्रेम ?	: ५ :	अनु. : स्वामी चैतन्य बोधिसत्व
(भेंट-वार्ता के कुछ अंश)	: :	अहमदाबाद
मृत्यु-बोध की संभावना :	: :	
प्रेम में	: १६ :	संचयन : 'आकुल' राजेन्द्र
कृष्ण और गीता (प्रवचन)	: २६ :	संकलन : अरविन्द कुमार

गीत : काव्य

रजनीश हैं चितचोर	: ३ :	सुश्री गोपी जेठानी, जबलपुर
प्रार्थना	: ३ :	स्वामी योग प्रीतम, भीलवाड़ा
प्रभु-पुजारिन	: कवर ४ :	मा योग मीरा, जूनागढ़

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट–टाउन, जबलपुर.

मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

रजनीश हैं चितचोर

रे मन, रजनीश हैं चितचोर !
देख चुराया
चैन है तेरा
बांध प्रीत की डोर !!

सर पे आज्ञा-चक्र की जोती
नैन समाये प्रेम के मोती
खींचें अपनी ओर !
रजनीश हैं चितचोर !!

तेरे खेवनहार वही हैं
नैया की पतवार वही हैं
थमा दे जीवन-डोर !
रजनीश हैं चितचोर !!

अब न छुड़ाये छूटे बंधन
ऐसी बसा ले मूरत नैनन
देख न तू चहुंओर !
रजनीश हैं चितचोर !!

• *सुश्री गोपी जेठानी*
जबलपुर

प्रार्थना

मैं देख सकूं सब में तुमको
वह दृष्टि मुझे तुम दोगे क्या ?

मैं भोग सकूं निज अमृत में
वह दृष्टि मुझे तुम दोगे क्या ?

है अर्थ प्रेम का तेरे प्रति—
मैं प्रेम निभा पाऊं सबसे

तुम ही तुम व्याप्त रहो सबमें
वह सृष्टि मुझे तुम दोगे क्या ?

तेरी अनुकम्पा बिना यहां
कब कौन स्वयं को जान सका

जो आत्म-भाव से देखे जग
वह व्यष्टि मुझे तुम दोगे क्या ?

• *स्वामी योग प्रीतम*
भीलवाड़ा (राजस्थान)

महावीर

मेरी दृष्टि में : भगवान रजनीश

(भगवान श्री द्वारा १७ सितंबर ६९ से २ अक्टूबर ६९ तक श्रीनगर के पास डल झील स्थित शिविर में दिए गए प्रवचन जो 'महावीर मेरी दृष्टि में' प्रकाशित हो चुके हैं, का संक्षिप्त रूपांतरण।)

असल में बहिर्जीवन से अंतर्जीवन का कोई संबंध ही नहीं है, और इसीलिए यह समझने जैसा है कि क्राइस्ट का बाहरी जीवन एक है, महावीर का दूसरा है, बुद्ध का तीसरा है; फिर भी अन्तर्जीवन एक है, और बहिर्जीवन को देखने वाले लोग इसलिए मुश्किल में पड़ जाते हैं।

★ पंचम पुष्प ★

सारी ईसाइयत कहती है कि जीसस के शिष्य जूडास ने तीस रुपये में जीसस को बेचकर पकड़वाकर सूली लगवाई। जूडास का नाम ईसाइयत के इतिहास में इतना गन्दा हो गया कि बड़ी गाली बन गया। लेकिन पश्चिम का एक फकीर गुरजयिफ पहला आदमी हुआ जिसने कहा कि यह बात सरासर झूठी है, क्योंकि जीसस चाहते थे कि पकड़े जायें और सूली पर लटकाए जायें, इसलिये यह आयोजन जीसस का स्वयं का था—जूडास का नहीं; और जूडास उनका सबसे बड़ा और प्रिय सेवक है जो जीसस की किसी आज्ञा को नहीं टाल सकता – जीसस को स्वयं को पकड़वाने तक की आज्ञा को।

तो गुरजयिफ ने सबसे पहले कहा, कि मेरी गहरी खोज है कि जूडास दुश्मन नहीं ◄►उस जैसा मित्र पाना मुश्किल है, जो जीसस की स्वयं को फांसी लगवाने तक की आज्ञा को चुपचाप शिरोधार्य कर ले! क्योंकि जूडास ने इतने पर भी इन्कार न किया जब जीसस ने कहा कि मुझे पकड़वा दो, मेरी फांसी लगवानी जरूरी है। अगर फांसी नहीं लगती, तो जो मैं कह रहा हूं, वह खो जायेगा; फांसी लगती है तो सील-मुहर हो जायेगी – मेरी फांसी ही अब मेरा काम कर सकती है, और कोई उपाय नहीं।◄►

फाँसी से बचाने वाला मित्र खोजना आसान है; पर फांसी लगवाने वाला मित्र खोजना बड़ा मुश्किल है। इसलिये गुरजयिफ ने जब पहली दफा यह बात कही, तो बड़ी मुश्किल, हुई – सारी ईसाइयत ने बड़ा विरोध किया, किन्तु किसी ने हिम्मत नहीं

की कि कोशिश करता जानने की कि यह आदमी कहता कहां से है। लेकिन मैंने एक प्रयोग किया है और मैं हैरान हुआ कि वह ठीक कहता है। शास्त्र खोज का रास्ता है ही नहीं, बल्कि सबसे बड़ी रुकावट है, क्योंकि वह मन को ऐसी बातों से भर देता है, जो कि नहीं भी हों; और तब उनसे नीचे उतरकर उनके विपरीत जाना एकदम मुश्किल हो जाता है।

तो गुरजियफ ने 'सूली' को 'क्राइस्ट ड्रामा' का नाम दिया, एक नाटक बताया। जीसस ने जूडास को राजी कर लिया कि जो मैं कह रहा हूं अगर इसे दूर-दूर तक पहुंचाना जरूरी है तो मुझे फांसी लगवा देना जरूरी है, नहीं तो बात खो जायेगी और मेरी फांसी ही मूल्यवान बनेगी! **जीसस से ज्यादा क्रास मूल्यवान बन गया।**

इस तरह की बातें बहुत मुश्किल में डालती हैं, लेकिन इनके सम्बन्ध में विवाद करने का कोई उपाय नहीं है—केवल प्रयोग करने का ही उपाय है। इन दिनों बहुत-सी बातें पहली दफा ही ख्याल में आयें, लेकिन उन्हें इसलिए न मान लेना कि मैंने कहीं; और न इसलिये इन्कार कर देना कि पहली दफा किसी ने कहीं; पर अगर सच में ही प्रेम हो तो खोज पर निकलना।

● आपने महावीर के सम्बन्ध में अपनी अंतरदृष्टि से कुछ बताने को कहा है, तो उसकी सत्यता जानने के लिए कोई दूसरा आदमी भी उसी प्रकार का प्रयोग करके देख ले। इसी अन्तर्दृष्टि से यदि आप किसी व्यक्ति की इस जीवन की व्यक्तिगत-गुह्य बात बता दें, तो आपकी बात प्रामाणिक मानी जा सकती है कि उसी प्रकार आप महावीर के पिछले जीवन को अन्तरदृष्टि से जान सके होंगे। क्या आप इस प्रकार करना पसंद करेंगे?

★ दो-तीन बातें समझनी चाहिये। पहली बात, महावीर के बाह्य जीवन और अन्तर्जीवन की घटना जानना एकदम भिन्न बात है। बाह्य से कोई प्रयोजन ही नहीं—न उत्सुकता; लेकिन अन्तर्जीवन में घटित के प्रति उत्सुकता भी, प्रयोजन भी, उस तरफ दृष्टि भी है। तुम्हारे अन्दर भी देखा जा सकता है, बहिर्जीवन से कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि वह स्वप्न से ज्यादा मूल्य नहीं रखता। हमें वह बहुत महत्वपूर्ण दिखता है क्योंकि हम उसे रात में देखे स्वप्न के समान बिलकुल सत्य मानते हैं; हालांकि जागते ही सपना एकदम व्यर्थ हो जाता है।

तो मेरे लिये महावीर का सांसारिक जीवन कोई अर्थ नहीं रखता, यहां तक कि महावीर हुए हों तो ठीक, न हुए हों तो ठीक। महत्वपूर्ण तो वह है – अन्तर में जो गति हुई, चेतना में जो विकास हुआ, जो रूपान्तरण हुआ। वैसे तो किसी के अंतर्जीवन में उतरकर भी तुम जांच नहीं कर पाओगे, क्योंकि तुम अपने ही अन्तर्जीवन से अपरिचित हो। अगर फिर भी तुमने मेरी बात की जांच करनी है तो तुम्हें अपने अन्तर्जीवन में उतरना पड़ेगा।

दूसरी बात, यदि कोई तुम्हारे बहिर्जीवन के बारे में कुछ घटनाएं बताए तो इससे यह पक्का नहीं होता कि वह महावीर के बारे में जो बताएगा वह ठीक होगा। सामने मौजूद होने पर तो बहिर्जीवन की घटनाओं में उतरना बड़ी साधारण-सी कला की बात है—साधारण-सा 'टेलीपेथिस्ट', ज्योतिषी बता सकेगा। तो किसी के बहिर्जीवन को जान लेना कोई अर्थ नहीं रखता कि महावीर के अंतर्जीवन के बारे में प्रामाणिकता से कहा जा सके। ◀▶असल में बहिर्जीवन से अन्तर्जीवन का कोई संबंध ही नहीं है, और इसीलिए यह समझने जैसा है कि क्राइस्ट का बाहरी जीवन एक है, महावीर का दूसरा है, बुद्ध का तीसरा है; फिर भी अन्तर्जीवन एक है, और बहिर्जीवन को देखने वाले लोग इसलिए मुश्किल में पड़ जाते हैं।◀▶

बुद्ध, महावीर आदि के बहिर्जीवन को पकड़ने वाला उन्हें समझने में असमर्थ हो जायेगा। क्योंकि कोई देखता है कि जो महावीर के बहिर्जीवन में है वह अनिवार्य रूप से अन्तर्जीवन से बंधा हुआ है। जैसे, वह देखता है कि महावीर नग्न खड़े हैं, तो वह सोचता है कि जो परमज्ञान को उपलब्ध होता होगा वह नग्न खड़ा होगा। यदि बुद्ध वस्त्र पहने हैं तो कैसे परम ज्ञान को उपलब्ध होंगे। तो मुझे बहिर्जीवन से कोई प्रयोजन ही नहीं है।

तीसरी बात, मैं महावीर के सम्बन्ध में ठीक कह रहा हूं अथवा नहीं—इस बात की जांच करने का भी कोई अर्थ नहीं है। अर्थ केवल एक है कि वैसे अंतर्जीवन में उतरा जा सकता है या नहीं? मेरी इस जांच-पड़ताल का भी कोई अर्थ नहीं, क्योंकि मैं इसलिये नहीं कह रहा हूं कि मैं सही हूं या गलत—या कुछ सिद्ध करना चाहता हूं; बल्कि कह इसलिए रहा हूं कि तुम जहां हो वहां से सरक सको, किसी दूसरी दिशा में गति कर सको। इसलिये यदि सारी बातचीत तुम्हें अन्तर्दिशा में गति देने वाली बन जाती है, तो

काफी प्रमाण हो गया, अन्यथा नहीं। मेरे लिए अर्थवत्ता इसमें है कि महावीर सम्बन्धी वक्तव्य तुम्हारे जीवन को किसी रूप में रूपान्तरित करने वाला बनता हो, चाहे दुनिया उसे गलत सिद्ध कर दे अन्यथा कितना भी सही हो गलत हो गया। इसका मतलब यह है और समझना उपयोगी भी बहुत होगा कि यही वजह है कि जो लोग जानते रहे हैं उन्होंने इतिहास लिखने पर जोर नहीं दिया, बल्कि पुराण (मिथ) पर जोर दिया, जबकि जगत इतिहास पर जोर देता है। तो दोनों का अन्तर समझना उपयोगी होगा।

(क्रमशः)

● संक्षिप्त संकलन : *'आकुल' राजेन्द्र*
जबलपुर

● निवेदन ●

पूज्य भगवान की भगवत् वाणी प्रेमी-हृदयों तक निरंतर पहुंचती रहे और सुविज्ञ प्रेमी जन आर्थिक कठिनाई अनुभव न करें, इस हेतु 'युक्रांद' के प्रेमी परिवार ने मूल्य-वृद्धि करना कतई उचित नहीं समझा है। केवल पृष्ठ संख्या भर ६४ से ५६ कर दी है।

आशा है सुविज्ञ प्रेमी हृदय हमारे इस सहृदय निवेदन को अंगीकार करेंगे।

भगवत् कृपा सहित।

निवेदक :
युक्रांद परिवार

क्या है भगवत् प्रेम ?

[भगवान श्री रजनीश के साथ मा आनन्द प्रेम, न्यूयार्क, यू. एस. ए., की भेंट-वार्त्ता से लिए गये कुछ अंश —दिनांक २१ अक्टूबर, १९७१, बम्बई। 'संन्यास' अंग्रेजी पत्रिका, जुलाई-अगस्त, १९७२ से अनूदित]

प्रश्न—**भगवान श्री ! क्या आप समझा सकते हैं कि जो प्रेम परमात्मा की तरह से अनुभव किया जाता है वह प्रेम क्या होता है, अथवा बतायें कि एक ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति प्रेम को कैसे अनुभव करता है ?**

भगवान श्री :

मेरे लिए यह कहना कठिन है कि
कुछ भी **परमात्मा के प्रेम** की तरह से होता है क्योंकि
प्रेम ही परमात्मा है।
जब कभी भी वह होता है वह परमात्मा ही होता है;
जहां कहीं भी वह होता है वह परमात्मा ही होता है।
प्रेम सर्वाधिक अज्ञात चीजों में से एक है।
उसके बारे में बहुत बात की जाती है।
और, उसे कभी भी जिया नहीं जाता।
हम उन्हीं चीजों के बारे में बात करते हैं
जिनकी कि हमारे पास कमी होती है
यह प्रेम के बारे में अत्यधिक चर्चा का मतलब है
कि प्रेम अन-अस्तित्वगत है।
जो कुछ भी प्रेम के द्वारा जाना जाता है
वह कुछ और ही बात है;
जो कुछ भी प्रेम की तरह से जाना जाता है
वह प्रेम नहीं होता बल्कि आकर्षण होता है।
आप किसी को प्रेम करने लगते हैं,
यदि वह आपको पूरा का पूरा दे दिया जाय
तो प्रेम शीघ्र ही मर जायेगा।
यदि वह व्यक्ति आपको नहीं मिले जिसे कि आप प्रेम करते हैं

तो फिर प्रेम बढ़ेगा।
वह तीव्र हो जायेगा।
यदि प्रिय का मिलन असंभव हो गया हो
तो प्रेम शाश्वत हो जायेगा।
तनाव पैदा होता है
अहंकार आता है और अधिकार जमा लेता है,
जितना ही अधिक आपको वंचित रखा जाता है
उतना ही अधिक तनाव,
उतना ही अधिक आकर्षण बढ़ जाता है।
इसे आप प्रेम कहते हैं—इसी तनाव को !
वह सिर्फ अहंकार का आकर्षण था,
अहंकार का तनाव था, एक संघर्ष,
एक द्वन्द्व, एक आक्रमण,
हिंसा—बस इतना ही।

और भी बहुत सी ड्युअलिटीज होती हैं, द्वैत होते हैं—
आसक्ति-ऊब, प्रेम-घृणा, आकर्षण-विकर्षण।
कोई भी आकर्षण प्रेम नही हो सकता,
क्योंकि विकर्षण तब अनिवार्य हो जाता है।
यह वस्तुओं की अपनी प्रकृति होती है
कि उनका दूसरा पहलू आएगा ही।
नीत्से ने कुछ वर्ष पूर्व घोषणा की थी कि
'परमात्मा मर गया है।'
वस्तुतः जो चीज इस शताब्दी के साथ
मर जाने वाली है वह है सैक्स—काम-वासना।
मेरा मतलब यह नहीं कि लोग
काम-रहित हो जायेंगे।
वे काम में तो पड़ेंगे परन्तु वह जो इन्फेचुएशन—
खिंचाव है,
यह जो इतना अत्यधिक जोर है उस पर
वह चला जाएगा।

यह एक साधारण कृत्य रह जायेगा जैसे कि भोजन करना
या पेशाब जाना आदि।
यह कोई अर्थपूर्ण नहीं रह जाएगा।
यह अर्थपूर्ण हो गया, बाधाओं की वजह से
और इसे ही आप प्रेम के नाम से पुकारते रहे हैं।

तब फिर क्या है प्रेम?
प्रेम एक बिलकुल ही भिन्न आयाम है।
वास्तव में, इसका सेक्स से कोई सम्बन्ध नहीं है।
मेरे लिए,
प्रेम एक **ध्यानी चित्त** की उप-उत्पत्ति है, बाइ-प्रोडक्ट,
उसका संबंध ध्यान से है।
क्योंकि जितने ही आप अधिक मौन होते हैं
जितने ही आप स्वयं के साथ आराम से होते हैं
उतने ही अधिक आप तृप्त अनुभव करते हैं।
आपके स्वरूप की एक नई अभिव्यक्ति होने लगती है :
आप प्रेम करने लगते हैं।
किसी व्यक्ति विशेष को नहीं
(हालांकि किसी खास व्यक्ति के साथ ऐसा भी हो
सकता है)
परन्तु यह प्रेम करना
तुम्हारे अस्तित्व का एक ढंग हो जाता है।
तब फिर यह कभी विकर्षण में नहीं पलटता
क्योंकि यह आकर्षण ही नहीं है बिलकुल भी।
जिस प्रेम की मैं बात कर रहा हूं
वह न तो मालिक बनने वाला है
न ही कुछ अपेक्षा करने वाला है
वह तो आप कैसे व्यवहार करते हैं, सिर्फ इतना ही।
आप इतने शान्त हो गये हैं कि
आपकी शान्ति दूसरों तक जाती है।
ऐसा न सोचें कि घृणा कुछ आपके प्रेम के विपरीत है।

वह तो उसी का अभिन्न हिस्सा है, एक सातत्य है।
यदि आपने किसी को प्रेम किया है तो
आप उसे घृणा भी करेंगे।
इसीलिए प्रेमी सदैव एक दूसरे से द्वन्द्व में होते हैं।
जब वे दोनों साथ नहीं होते तो
वे एक दूसरे के गीत गा रहे होते हैं।
परन्तु जब वे साथ होते हैं तो सिर्फ लड़ रहे होते हैं।
वे अकेले नहीं जी सकते,
वे दोनों साथ-साथ भी नहीं जी सकते।
जिस प्रेम की मैं बात कर रहा हूं उसका मतलब है कि
आप इतने शान्त हो गये हैं कि अब न तो
आकर्षण है और न विकर्षण।
वस्तुतः अब कोई प्रेम नहीं है, कोई घृणा नहीं है।
अब आप कतई पर-केन्द्रित नहीं, नाट अदर-ओरिएन्टेड,
दूसरा आपके लिए चला गया।
आप अपने साथ अब अकेले हैं।
इस एकाकी भाव में
प्रेम आपके पास आता है एक सुगन्ध की तरह।
दूसरे की मांग सदा एक कुरूपता है।
दूसरे पर निर्भर रहना सदा मालिकयत जमाना है।
दूसरे से कुछ भी मांगना बंधन निर्मित करना है
और लाता है दुःख व द्वन्द्व।

एक व्यक्ति जो कि स्वयं अपने में पूरा हो गया है
वह एक वर्तुल बन गया है, अकेला।
मण्डल पूरा हो गया है।
आप दूसरों से वर्तुल पूरा करने की कोशिश कर रहे है।
आदमी औरत से, स्त्री पुरुष से।
किन्हीं खास क्षणों में रेखायें मिलती हैं, परन्तु
वे अभी मिली भी नहीं कि
बिछोह शुरू हो जाता है दोनों में;

आप फिर पकड़ लिए जाते हैं।

यदि आप भीतर पूरे हो जाते हैं
एक वृत्त अपने में पूरा, कि
कोई रेखा बाहर जाती हुई नहीं, कि
कुछ भी बाहर अन्य के पास जाता हुआ नहीं, कि
एक पूर्ण मण्डल भीतर,
तो कुछ खिलने लगता है आपके भीतर,
जो कि प्रेम होता है, तब जब भी कोई तुम्हारे पास आता है,
आप उसे प्रेम करते हैं।
यह कोई कृत्य नहीं होता,
यही तुम्हारा होना, बीइंग होता है,
मात्र तुम्हारी उपस्थिति ही प्रेम हो जाती है।
यह प्रेम सिर्फ स्वतन्त्रता के साथ आता है।
इसलिए मुक्ति, स्वतन्त्रता ही तुम्हारा भाव है, और
प्रेम है दूसरों की भावना—तुम्हारे बारे में।
तुम महसूस करते हो—"मैं पूर्ण मुक्त हूं।"
तुम्हारी मुक्तता दूसरों द्वारा महसूस नहीं की जा सकती।
कभी-कभी तुम्हारा व्यवहार इनके लिए कठिनाई भी
पैदा कर सकता है।
वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि तुम्हारे भीतर
क्या हो गया है।
और एक अर्थ में आप उनके लिए
एक कठिनाई हो जायेंगे, एक असुविधा,
क्योंकि
अब आपके बारे में पूर्व-कथन नहीं किया जा सकता।
आपके बारे में कुछ भी नहीं जाना जा सकता
आप क्या करेंगे ?
आप क्या कहेंगे ?
क्या होने जा रहा है दूसरे दिन सुबह !
कोई नहीं जान सकता।
आप हर एक के लिए असुविधापूर्ण हो जाते हैं।

आप कुछ भी कर सकते हैं।
आप मृत नहीं हो गये।
और वे ऐसे बन्धनों में पड़े हैं कि
वे सोच भी नहीं सकते कि क्या है मुक्तता।

वे
पिंजरे में बन्द रह रहे हैं,
उन्होंने खुले आकाश को नहीं जाना है,
इसलिए यदि आप खुले आकाश की बात भी करेंगे
तो भी वह संवादित नहीं हो सकेगी।
परन्तु वे आपका प्रेम अनुभव कर सकते हैं।
क्योंकि उन्होंने सदा-सदा उसकी मांग की है,
यहां तक कि अपने पिंजरों में भी
वे उसे ही ढूंढ़ते रहे हैं,
अपने बन्धनों में भी उसे ही खोजते रहे हैं।
वस्तुतः उन्होंने सारी दासता निर्मित कर ली है
क्योंकि वे प्रेम मांगते रहे हैं।

व्यक्तियों के साथ बन्धन,
वस्तुओं के साथ बन्धन,
ये सारे बन्धन उन्होंने केवल प्रेम की खोज में
निर्मित कर लिए।
इसलिए जब भी कोई व्यक्ति मुक्त होगा
उसका प्रेम एक अनुभव होगा।
किन्तु वह प्रेम आप अनुभव करेंगे एक करुणा की भांति,
न कि प्रेम की भांति
क्योंकि उसमें कोई उत्तेजना नहीं होगी।
वह एक फैली हुई रोशनी होगी—
ताप-रहित, बिना किसी उष्णता के।
यदि आप उसे 'ठन्डा प्रेम' कहें तो वह अर्थपूर्ण होगा।
आप नहीं कह सकते कि बुद्ध का प्रेम गरम था।
वह तो बर्फ की तरह ठन्डा था।

उसमें कोई उत्तेजना नहीं थी;
वह था, बस इतना ही,
क्योंकि कोई भी उत्तेजना आपके बीइंग का, आपके सच्चे
स्वरूप का अंग नहीं हो सकती।
उत्तेजना आती है और जाती है।
वह सतत नहीं हो सकती।

शिखर नहीं होंगे और घाटियां भी नहीं होंगी।
प्रेम बर्फ की तरह ठन्डा है, इसलिए
आप उसे कम्पेशन की भांति, करुणा की भांति
अनुभव करेंगे।
यह मानव इतिहास की एक सर्वाधिक कठिन घटना है,
क्योंकि ज्ञानी की मुक्तता असुविधा ही उत्पन्न करती है
और उसका प्रेम करुणा।
इसलिए मानव समाज ऐसे लोगों के विषय में बंट जाता है।
इसीलिए
क्राइस्ट के साथ लोगों ने उस मुश्किल को महसूस किया
जो कि उसने निर्मित की,
और ये ऐसे लोग होंगे
जो कि अच्छे खाते-पीते वर्ग के होंगे
क्योंकि उन्हें किसी करुणा की कोई आवश्यकता नहीं है।
ये ऐसे लोग होंगे जो कि खूब सुखी-संपन्न होंगे,
जो कि सोचेंगे कि
हमारे पास प्रेम है, धन है, मान है, सब कुछ है।
क्राइस्ट होते हैं और ये सुखी-सम्पन्न लोग
उनके खिलाफ हो जायेंगे।
जिनके पास कुछ नहीं है वे उसके साथ होंगे,
क्योंकि वे जीसस की करुणा अनुभव करेंगे।
उन्हें प्रेम की आवश्यकता है,
उन्हें किसी ने प्रेम नहीं किया है
परन्तु इस आदमी ने उन्हें प्रेम किया है
उन्हें कोई असुविधा अनुभव नहीं होगी,

क्योंकि उनके पास खोने के लिए भी कुछ नहीं है !

इसलिए जब ऐसा आदमी मर जाता है
तब प्रत्येक उसकी करुणा अनुभव करेगा,
क्योंकि अब कोई असुविधा नहीं है;
यहां तक कि सुखी-सम्पन्न लोग,
पुराने धर्म को मानने वाले लोग,
वे सब एक शान्ति अनुभव करेंगे,
वे उसकी पूजा करेंगे ।
परन्तु जब वह जीवित है तब वह विद्रोही है—
इसलिए नहीं कि समाज में कुछ गलत है;
वह विद्रोही है क्योंकि वह मुक्त है, स्वतन्त्र है ।

इसलिए समाज यदि बदल जाता है, तो वही जो कि
विद्रोही था—पुराणपन्थी हो जाता है ।
परन्तु एक क्राइस्ट सदैव ही विद्रोही है ।
किसी परिस्थिति से कोई फर्क नहीं पड़ता ।
उसका विद्रोह कभी नहीं रुकेगा क्योंकि
उसका विद्रोह किसी के विरुद्ध नहीं है ।
वह तो इसलिए है क्योंकि उसके पास एक मुक्त चेतना है ।
विद्रोह उसकी आत्मा है ।
यदि आज भी जीसस आयें,
तो ईसाई लोग आराम से नहीं हो सकेंगे उसके साथ ।
वे हो ही नहीं सकते ।

इसीलिए, जो भी शिक्षक हुआ जिसने कि 'जाना'
वह एक विद्रोही शिक्षक हुआ ।
परन्तु जो परम्परा उससे संबंधित है
वह विद्रोही नहीं है ।
वह केवल उसकी करुणा से संबंधित है—
उसके विद्रोह से कभी भी नहीं,
केवल उसके प्रेम से ।

परन्तु तब वह निर्वीर्य हो जाता है
क्योंकि, प्रेम बिना स्वतन्त्रता के नहीं हो सकता।
बिना विद्रोह के नहीं हो सकता।
आप बुद्ध के जितने प्रेमपूर्ण नहीं हो सकते
जब तक कि आप बुद्ध के जितने ही स्वतन्त्र न हो जाएं।

तब प्रेम घृणा के विपरीत नहीं।
वह तो केवल प्रेम और घृणा दोनों का अभाव है।
पूरा द्वैत ही अब अनुपस्थित है
वह आकर्षण और विकर्षण दोनों का अभाव है
इसलिए ऐसा आदमी जो कि मुक्त है और प्रेमपूर्ण है,
यह आप पर निर्भर करता है कि आप उसका
प्रेम ले पाते हैं या नहीं।
यदि मैं आपको प्रेम करता हूं, तो यह
मुझ पर निर्भर नहीं करता कि मैं तुम्हें कितना
प्रेम दे सकता हूं,
यह सदैव आप पर निर्भर करता है कि
आपको कितना प्रेम दिया जा सकता है।
क्योंकि देने वाला तो पूरा खुला है
और हर क्षण दे रहा है।
यहां तक कि जब कोई भी मौजूद नहीं है
तब भी प्रेम बह रहा है।

वह तो एक फूल की तरह से है
जहां कोई भी नहीं गुजर रहा है
राह पर रेगिस्तान में, जंगल में—
एक अकेला फूल।
कोई भले ही उसके बारे में जाने भी नहीं
कि वह खिल गया है और अपनी सुगन्ध लुटा रहा है।
परन्तु फिर भी वह तो देगा
क्योंकि वह सुगन्ध किसी विशेष को नहीं दी जा रही है।

वह तो मात्र दी जा रही है
भीतर कुछ घटित हो गया है उससे।
पुष्प खिल गया है, इसलिए सुगन्ध है।

कोई गुजरता है या नहीं,
यह बात ही असंगत है।
यदि कोई गुजरता है और वह इस योग्य है,
संवेदनशील है तो सुगन्ध उसे मिल सकती है।
यदि वह पूरी तरह मृत और असंवेदनशील है
तो हो सकता है उसे पता ही न चले
कि कोई फूल भी है सड़क के किनारे।

इसलिए, जब प्रेम है
तो तुम उसे ले भी सकते हो और नहीं भी ले सकते हो।
जब प्रेम नहीं है तो दूसरा तुम्हें दे भी सकता है
और नहीं भी दे सकता है, और
प्रेम के ऐसे कोई विभाजन नहीं हो सकते—
भगवत् प्रेम अथवा अभगवत् प्रेम।
इसलिए मैं सदैव कहता हूं—
'प्रेम भगवत् है—प्रेम ही परमात्मा है।'

● अनुवाद : *स्वामी चैतन्य बोधिसत्व*
अहमदाबाद

मृत्यु-बोध

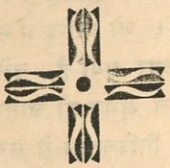

> प्रेम : आध्यात्मिक अर्थ में मृत्यु है

की संभावना—प्रेम में !

[भगवान रजनीश के अमृत-प्रवचनों से संचयित एक अंश]

मृत्यु के सम्बन्ध में थोड़ी-सी बातें। पहली बात मृत्यु अत्यन्त निजी अनुभव है। दूसरे को हम मरता हुआ देखते हैं; लेकिन मृत्यु को नहीं देखते, दूसरे को मरते देखना मृत्यु का परिचय नहीं है। मृत्यु आन्तरिक घटना है, स्वयं मरे बिना मृत्यु को देखने का कोई उपाय नहीं है। शायद इसीलिए जब भी हम मृत्यु के सम्बन्ध में सोचते हैं, तो ऐसा लगता है कि मृत्यु दूसरे की होगी क्योंकि हमने दूसरों को ही मरते देखा है। जब हम दूसरों को मरते देखते हैं, तब हम क्या देखते हैं ? हम इतना ही देखते हैं कि जीवन क्षीण होता चला जाता है, शरीर से जीवन ज्योति विदा होती जाती है, लेकिन उस क्षण में जहां जीवन और शरीर पृथक होते हैं हम मौजूद नहीं हो सकते, वहां केवल वही व्यक्ति मौजूद होता है जो मर रहा है। तो, किसी को मरते देखना मृत्यु को देखना नहीं है; मृत्यु तो स्वयं ही देखी जा सकती है। खुद के लिए कोई दूसरा नहीं मर सकता, 'प्रॉक्सी' से मरने का कोई उपाय नहीं है। मृत्यु अत्यन्त निजी घटना है। उधार, मृत्यु का अनुभव नहीं हो सकता, और हमारा सब अनुभव उधार है। हमने सदा दूसरों को मरते देखा है, शायद इसीलिए मृत्यु का जो आघात हमारे ऊपर पड़ना चाहिए, वह नहीं पड़ता। उसकी गहराई हमारे ख्याल में नहीं आती। क्या जीवन में कोई और भी ऐसा अनुभव है, जो

मृत्यु जैसा हो? एक अनुभव है, लेकिन एकबारगी ख्याल भी नहीं आता कि उसका और मृत्यु का कोई सम्बन्ध हो सकता है। यह अनुभव है प्रेम, प्रेम और मृत्यु बड़े एक-से अनुभव हैं। तीसरा कोई भी अनुभव वैसा नहीं है। आपके लिए श्वास भी दूसरा व्यक्ति ले सकता है, आपका हृदय भी जरूरी नहीं कि आपका ही धड़के दूसरे का भी धड़क सकता है आपके लिए। आपका हृदय यदि पूरा-का-पूरा अलग कर दिया जाए और उसे दूसरे के हृदय से जोड़ दिया जाए तो भी आप जीवित रह लेंगे, खून भी दूसरे का आपकी नाड़ी में बह सकता है, श्वास भी यन्त्र आपके लिए ले सकता है; लेकिन प्रेम आपके लिए कोई दूसरा नहीं कर सकता।

प्रेम : आध्यात्मिक अर्थ में मृत्यु

प्रेम अत्यन्त निजी अनुभव है, मृत्यु और प्रेम बड़े संयुक्त हैं, इसलिए जिन लोगों ने प्रेम के सम्बन्ध में गहराई से सोचा है, उन्हें मृत्यु के सम्बन्ध में सोचना पड़ा है और जिन्होंने मृत्यु की खोजबीन की है, वे अन्ततः प्रेम के रहस्य में भी प्रविष्ट हुए हैं। कुछ बातें हमारे अनुभव में भी हैं; जैसे, **जो आदमी प्रेम से डरता है वह मृत्यु से भी डरेगा। जो आदमी मृत्यु से डरता है वह कभी प्रेम में नहीं पड़ेगा। जो व्यक्ति प्रेम की गहराई में उतर गया है, उसे मृत्यु के प्रति बिल्कुल अभय हो जाता है, इसलिए प्रेमी निश्चितता से मर सकता है।** प्रेमी की मृत्यु में कोई भय नहीं रह जाता, लेकिन जिसने कभी प्रेम ही न किया हो वह मृत्यु से बहुत डरेगा। तब एक दुष्टचक्र निर्मित होता है, एक 'वीसियस सर्किल' बन जाता है। मृत्यु से डरता है इसलिए प्रेम में नहीं उतरता है; क्योंकि प्रेम का अनुभव भी गहरे में मृत्यु का ही अनुभव है। जब तक कोई पूरी तरह मिटता नहीं तब तक प्रेम का जन्म ही नहीं होता, इसलिए **प्रेम आध्यात्मिक अर्थ में मृत्यु है।**

प्रेमबोध से मृत्युबोध

प्रेम वही कर सकता है जो अपने को मिटा लेने को राजी हो। जब तक कोई इतना नहीं मिट जाता कि बचे ही नहीं तब तक प्रेम का फूल नहीं खिलता, इसलिए जिसने प्रेम को जान लिया है, उसने मृत्यु को भी जान लिया है, या जिसने मृत्यु को जान लिया है, उसने प्रेम को भी जान लिया है। प्रेम और मृत्यु बड़ी संयुक्त घटनाएं हैं, गहरे आन्तरिक तल पर वे एक ही वस्तु के दो रूप हैं, यह बहुत हैरानी की

बात है। मृत्यु तो हम जब मरेंगे तब होगी, दूसरे को मरते देखकर मृत्यु का कोई अनुभव नहीं कर सकता। खुद मरेंगे तब ही अनुभव होगा। लेकिन एक उपाय है प्रेम, जिससे हम मृत्यु का अनुभव आज भी कर सकते हैं। फिर प्रेम का ही और विराट रूप है प्रार्थना, फिर प्रेम का ही सार अंश है ध्यान। ये सब मृत्यु के ही रूप हैं, हिन्दू शास्त्रों ने तो कहा है कि, 'गुरु मृत्यु है'। इसी अर्थ में आगे कहा है कि गुरु के पास तभी कोई पहुंच सकता है, जब वह इस स्थिति में अपने को छोड़ दे जैसे कि वह खुद मिट गया और अगर गुरु के पास मृत्यु घटित न हो तो गुरु से कोई सम्बन्ध ही नहीं जुड़ता।

श्रद्धा भी मृत्यु

श्रद्धा भी मृत्यु है, वह प्रेम का ही एक रूप है। यह मृत्यु तो जीवन के अन्त में आयेगी जिसे हम दूसरे में घटते देखते हैं, लेकिन प्रेम आज भी घट सकता है, प्रार्थना आज भी हो सकती है, ध्यान में आज भी प्रवेश हो सकता है। जो लोग ध्यान में प्रवेश कर जाते हैं उनका मृत्यु-भय मिट जाता है। सिर्फ ध्यानी मृत्यु के बाहर हो जाता है, जैसे प्रेमी बाहर हो जाता है, क्यों?...

वह मैं नहीं--जो मरता है

...इसलिये नहीं कि ध्यान के द्वारा मृत्यु पर विजय हो जाती है, इसलिये भी नहीं कि प्रेम द्वारा मृत्यु पर विजय हो जाती है, बल्कि इसलिये कि **जो प्रेम में मर कर देख लेता है वह जान जाता है कि जो मरता है—वह मैं नहीं हूं?** ध्यान में जो मर कर देख लेता है, वह जान जाता है कि जो मरता है वह मेरी परिधि है, मेरी देह है, मेरा आवरण है, "मैं नहीं हूं"। मृत्यु से गुजर कर जाना जाता है कि मेरे भीतर में कोई अमृत भी है। इस अमृत के बोध से मृत्यु नहीं मिटती। मृत्यु तो घटेगी ही, महावीर को भी घटेगी और कृष्ण को भी घटेगी, और बुद्ध को भी घटेगी। मृत्यु तो घटेगी ही लेकिन तब वह मृत्यु केवल दूसरों के लिये होगी, दूसरे देखेंगे कि महावीर मर गये और महावीर जानते रहेंगे कि वे नहीं मर रहे हैं। भीतर कोई मृत्यु घटित नहीं होगी, तब मृत्यु बाहरी घटना हो जाएगी। खुद के लिये भी ऐसा अनुभव न हो पाये तो जीवन व्यर्थ गया।

मनुष्य भी एक वृक्ष

इसे हम समझ लें, तो फिर यह सूत्र समझ में आये। एक बीज बोते हैं, वृक्ष बढ़ता है, बड़ा होता है, तब

आप कहते हैं कि वृक्ष सफल हुआ—बीज को बोना हमारा सफल हुआ। जब फल लगते हैं, जब फूल खिलते हैं जब फल पकते हैं, वृक्ष जो दे सकता था, जब पूरा दे चुकता है तब हम कहते हैं सफल हुआ श्रम। जिस वृक्ष पर फल न लगे, जो बांझ रह जाए उस वृक्ष को हम सफल नहीं कहेंगे, हम कहेंगे कहीं अवरोध आ गया है, यह कहीं रास्ता भटक गया है, कहीं वृक्ष किसी ऐसे रास्ते पर चला गया है जहां जीवन की निष्पत्ति नहीं होती। जहां जीवन में निर्णय नहीं आता। इस वृक्ष का होना व्यर्थ हो गया। मनुष्य भी एक वृक्ष है, मनुष्य भी एक बीज है। सभी मनुष्य फल तक नहीं पहुंचते। पहुंचना चाहिये, पहुंच सकते हैं, सभी के लिये सम्भव है, लेकिन हो नहीं पाता। कुछ लोग भटक जाते हैं, कुछ लोग ऐसे मार्ग पर चले जाते हैं, जहां उनके जीवन में कोई फल नहीं लगते और जहां उनके जीवन में कोई फूल नहीं खिलते और जहां उनका जीवन निष्फल हो जाता है।

जीवन की सार्थकता—आनंदपूर्ण मृत्यु में

जीवन को हम देखें तो जीवन की अन्तिम घटना है मृत्यु, अगर हम ऐसा समझें तो जीवन का जो आखिरी चरण है, शिखर है वह मृत्यु है। जन्म तो शुरुआत है, मृत्यु अन्त है। मृत्यु में ही पता चलेगा कि व्यक्ति का जीवन सफल हुआ या असफल हुआ। अन्तिम घड़ी में ही जांच-पड़ताल हो जायेगी, निर्णय हो जाएगा। अगर आप हंसते हुए मर सकते हैं तो जीवन सफल हुआ, फूल खिल गया अगर आप रोते हुए ही मरते हैं तो जीवन व्यर्थ गया फूल खिल नहीं पाया, क्योंकि जब सब खिल जाता है तो मृत्यु एक आनन्द है। जब कुछ भी नहीं खिल पाता तो मृत्यु एक पीड़ा है, क्योंकि मैं बिना कुछ हुये मर रहा हूं, मेरा समय व्यर्थ गया, अवसर चूक गया। मैं कुछ हो नहीं पाया, जो हो सकता था, जो मेरे भीतर छिपा था वह बाहर न आ पाया, जो गीत मैं गा सकता था वह गीत अनगाया रह गया। तब पीड़ा है, हममें से अधिक रोते हुये ही मरते हैं, रोता हुआ मरण इस बात की खबर है कि जीवन असफल गया है। मृत्यु जब हंसते हुए होती है जब मृत्यु फूल की तरह खिलती है, जब मृत्यु एक आनन्द होती है, तो उसका अर्थ है, इस जीवन की गहनताओं में छिपा हुआ जो अमृत था उसका इस व्यक्ति को पता चल गया।

अब मृत्यु सिर्फ विश्राम है, अब मृत्यु अन्त नहीं है बल्कि अब मृत्यु

पूर्णता है। अब मृत्यु एक लम्बे निष्फल जीवन की समाप्ति नहीं है बल्कि एक "फुलफिलमेण्ट" है, एक पूर्णता है। जैसे कोई नदी मरुस्थल में खो जाए और सागर तक न पहुंच पाये, वैसे अधिक लोगों का जीवन है, कहीं खो जाता है, पूर्ण नहीं हो पाता। जैसे कोई नदी सागर में पहुंच जाए, गीत गाती, नाचती सागर से मिल जाए, मरुस्थल में भी नदी जाती है, सागर में भी नदी खोती है लेकिन मरुस्थल में नदी असफल हो जाती है, सागर में नदी सफल हो जाती है। इसलिए मरुस्थल में खोती नदी रोती हुई खोयेगी, सागर में गिरती नदी नाचती हुई, अहोभाव से भरी हुई। खोना तो दोनों में है मृत्यु में हम भी खोते हैं लेकिन रोते हुए, जैसे मरुस्थल में सब अवसर व्यर्थ हो गया। महावीर भी खोते हैं, लेकिन हंसते हुए; वह जो अवसर मिला था उससे जो भी हो सकता था वह पूरा हो गया।

मूर्ख गाड़ीवान जानबूझ कर

इस बात को समझकर सूत्र को समझें। जिस प्रकार मूर्ख गाड़ीवान जानबूझ कर साफ सुथरे राजमार्ग को छोड़कर विषम टेढ़े-मेढ़े, ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर चल पड़ता है, और गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक करता है; वैसे ही मूर्ख मनुष्य भी जान-बूझ कर धर्म को छोड़ अधर्म को पकड़ लेता है, और अन्त में मृत्यु के मुख में पहुंचने पर जीवन की धुरी टूट जाने पर शोक करता है।

इसमें बहुत-सी बातें हैं। महावीर ने इसमें एक बड़ी ही अद्भुत बात कही है वह यह कि "मूर्ख गाड़ीवान जानबूझ कर" यह बड़ी बात है। अगर गाड़ीवान मूर्ख है तो 'जानबूझ कर' क्या अर्थ रखता है और अगर गाड़ीवान जानबूझ कर ही गलत रास्ते पर चलता है तो मूर्ख कहने का क्या प्रयोजन ? लेकिन महावीर का प्रयोजन है, जब महावीर कहते हैं कि 'मूर्ख गाड़ीवान जानबूझ कर'। मूर्खता अज्ञान का नाम नहीं है मूर्खता उन ज्ञानियों के लिए कही जाती है, जो जानबूझ कर भूलें करते हैं। हम बच्चों को मूर्ख नहीं कहते, उन्हें अबोध कहते हैं। बच्चे को हम, अगर वह भूल करे तो, मूर्ख नहीं कहते, बच्चा ही कहते हैं। निर्दोष कहते हैं, अभी उसे पता ही नहीं है। मूर्ख तो आदमी तब होता है जब उसे पता होता है और फिर भी जानबूझ कर गलत रास्ते पर चला जाता है। जानवरों को हम मूर्ख नहीं कह सकते, अज्ञानी तो वे हैं। बच्चों को हम मूर्ख नहीं कह सकते, अज्ञानी वे हैं। मूर्ख तो हम उनको ही कह सकते हैं जो

ज्ञानी भी हैं। तब जानबूझ कर भूल शुरू होती है, और जानबूझकर भूल ही मूर्खता है।

लेकिन क्यों कोई जानबूझ कर भूल करता होगा? क्योंकि सुकरात ने कहा है कि कोई जानबूझकर भूल नहीं कर सकता। यूनान में इस पर लम्बा विवाद रहा है और इस विवाद में सारे जगत की संस्कृतियों का अलग-अलग अनुदान है कि कोई आदमी जब भूल करता है तो जानबूझ कर करता है, या कि अनजाने में करता है। सुकरात ने कहा है कि कोई आदमी जानबूझ कर भूल कर ही नहीं सकता। इस बात में भी सच्चाई है। कभी आप जानबूझ कर आग में हाथ डाल सकते हैं? असंभव है, जानबूझ कर कैसे कोई भूल करेगा, क्योंकि भूल दुःख देती है, पीड़ा देती है, वह तो अनजाने ही हो सकती है। लेकिन महावीर कहते हैं कि जानबूझ कर भी भूल हो सकती है, जानबूझ कर तब हो सकती है, जब आप जानते हैं कि हाथ आग में डालने से वह जलेगा ही, लेकिन फिर भी ऐसी परिस्थितियां पैदा की जा सकती हैं कि आप अहंकारवश आग में हाथ डाल दें, अगर यह प्रतियोगिता हो रही होगी—कौन कितनी देर तक आग में हाथ रख सकता है, तो आप जानबूझ कर भी आग में हाथ डाल सकते हैं। अहंकार के कारण आदमी जानबूझ कर भी आग में हाथ डाल सकते हैं। अहंकार के कारण आदमी जानबूझ कर भूल कर सकता है। सिर्फ एक यही कारण है जानबूझ कर भूल करने का। अहंकार के कारण; अगर आपके अहंकार को रस मिलता हो तो आप जानबूझ कर भूल कर सकते हैं। कोई गाड़ीवान क्यों साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़कर ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर चलेगा? ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर अहंकार को तृप्ति मिलती है। राजमार्ग पर तो सभी चलते हैं वहां अहंकार को कोई रस नहीं है। जब कोई उलटे-सीधे मार्ग पर चलता है तो अहंकार को रस मिलता है। एवरेस्ट पर चढ़ने में कौन-सा रस मिलता होगा? एवरेस्ट पर चढ़ने में कौन-सा रस मिलता होगा? एवरेस्ट की चोटी पर खड़े होकर क्या उपलब्धि होती है? जब तेनसिंह और हिलेरी पहली दफा एवरेस्ट पर खड़े हो गये होंगे तो उन्होंने क्या पाया होगा? एक बड़ी 'सूक्ष्म अहंकार की तृप्ति'। जहां पर कोई भी नहीं पहुंच पाया, वहां पहुंचने वाले वे पहले मनुष्य हैं। और तो कुछ भी एवरेस्ट पर मिलने को नहीं।

मात्र अहं की प्रतिष्ठा

यात्रा के अन्त पर मिलता क्या

है ? यात्रा के अन्त पर मिलती है अहंकार की तृप्ति । जो आदमी ऊबड़-खाबड़ मार्ग चुनता है जीवन में, वह जान कर चुनता है। सीधे मार्ग पर तो सभी चलते हैं, राजमार्ग पर चलना भी कोई चलना है। जब आदमी ऐसे बीहड़ रास्ते पर चलता है जहाँ चलना दुर्गम है, जहां एक-एक कदम मुश्किल है। जहां हर घड़ी कष्ट, हर घड़ी खतरा है, तब अहंकार को बड़ा रस आता है। नीत्से ने कहा है, खतरनाक ढंग से जियो (लिव डेंजरसली); क्योंकि नीत्से कहता है, जीवन में एक ही तृप्ति है और वह तृप्ति है शक्ति (पॉवर), लेकिन शक्ति का अनुभव तभी होता है जब हम विपरीत से जूझते हैं। सरल के साथ शक्ति का अनुभव नहीं होता; जहां कोई भी चल सकता है, वहाँ शक्ति का अनुभव कैसा ? जहां बच्चे भी निरापद चल लेते हैं, जहां अन्धे भी चल लेते हैं वहां शक्ति का क्या अनुभव ? शक्ति का अनुभव तो वहां है जहां कदम-कदम पर कठिनाई है, जहां पहुंचना असंभव है।

इसलिए अहंकारी ऐसे रास्ते चुनता है जो पहुंचने के लिए नहीं होते सिर्फ अहंकार के लिए होते हैं। तो मूर्ख गाड़ीवान जानबूझ कर ऊबड़-खाबड़ विषम रास्ते चुन लेता है, क्योंकि वहां उसके अहंकार की प्रतिष्ठा हो सकती है।

अधर्म की मूर्खता—अहंकार-तुष्टि हेतु

मूर्खता का गहनतम सूत्र है अहंकार। मूर्खता का सम्बन्ध ज्ञान से नहीं, अज्ञान से नहीं, मूर्खता का सम्बन्ध अहंकार से, 'ईगो' से है।

जितना अहंकारी व्यक्ति होगा उतना मूर्ख होगा। मजा यह है कि आप अपने ज्ञान का उपयोग भी आप अपनी मूर्खता के लिए कर सकते हैं, क्योंकि आप अपने ज्ञान से भी अपने अहंकार को भर सकते हैं, अगर कोई व्यक्ति अपने ज्ञान से भी अपने अहंकर को ही भर रहा हो, तो यह प्रयास मूर्खतापूर्ण है, अज्ञान से तो लोग भूलें करते हैं लेकिन ज्ञान से भी लोग भूलें करते हैं और बड़ी से बड़ी भूल जो ज्ञान से हो सकती है वह यह है कि हम अपने इस अहंकार को खड़ा करने के लिए गलत मार्ग चुन लें जानबूझ कर। आपको भी ख्याल होगा जिन्दगी में कई बार जीवन में विषम मार्ग चुनने में बड़ा सुख मिलता है। कठिन है जो, लम्बा है जो रास्ता, विघ्न जहां बहुत हैं, आपदाएं जहां हैं, विपत्तियां जहां हैं, उसे चुनने में बड़ा रस आता है; रस क्या है ? जीतने का रस, जब

रास्ते में कोई विपत्ति होती है तब हम जीतते हैं, जब रास्ते में कोई विपत्ति नहीं होती तो क्या खाक जीतना है ? इसलिए जो लोग इस भांति चलते हैं उनके जीवन में हजार जटिलताएं खड़ी हो जाती हैं, उनका सारा जीवन एक ही गणित मानकर चलता है; जहां विपत्ति हो, जहां बाधा हो, जहां अड़चन हो, जो असम्भव मालूम पड़े उसे करने में उन्हें रस आता है और इस जगत में अधर्म से असम्भव कुछ भी नहीं है। अधर्म इस जगत में सबसे असम्भव है, एवरेस्ट पर चढ़ा जा सकता है, चांद पर उतरा जा सकता है, मंगल पर भी आदमी उतर ही जाएगा, लेकिन यह कुछ भी असंभव नहीं है।

धर्म के प्रति उत्सुकता--मूर्ख गाड़ीवान जैसी

अधर्म सबसे असम्भव है, अधर्म का मतलब क्या ? कल मैंने आप को कहा धर्म का अर्थ है स्वभाव, अधर्म का अर्थ है स्वभाव के विपरीत। निश्चित ही स्वभाव के विपरीत जाना सबसे असम्भव बात है। आदमी स्वभाव के विपरीत जा ही कैसे सकता है ? स्वभाव का अर्थ ही है कि जिसके विपरीत आप न जा सकें। जैसे आग ठंडी होना चाहे तो यह स्वभाव के विपरीत हुआ। जैसे पानी ऊपर चढ़ना चाहे तो यह स्वभाव के विपरीत हुआ। ऐसे ही अधर्म का अर्थ है जो स्वभाव के पिपरीत है वही टेढ़ा-मेढ़ा है। धर्म तो बहुत सरल और सीधा है। लेकिन मजा है कि **धर्म में भी हम तभी उत्सुक होते हैं जब वह टेढ़ा-मेढ़ा हो, सीधे धर्म में हम जरा भी उत्सुक नहीं होते**, कोई बताये कि इतने उपवास करो, ऐसे खड़े रहो, रात भर जगे रहो, कि कोड़े मारो शरीर को, कि सुखाओ, जर्जर हड्डी हड्डी हो जाओ तब जरा रस आता है, कि हां, यह कोई बात हुई, जब धर्म भी टेढ़ा-मेढ़ा हो तब मूर्ख गाड़ीवान उत्सुक होता है।

इसलिए ध्यान रखना, धर्म की तरफ जो उत्सुकता दिखायी पड़ती है उसमें ९९ प्रतिशत मूर्ख गाड़ीवान होते हैं; जिनका कुल कारण यह होता है कि कोई असंभव करने जैसा दिखायी पड़ रहा हो तब उनको बड़ा रस आता है। अगर उनको कहो कि आराम से छाया में बैठकर भी धर्म उपलब्ध हो सकता है तो धर्म का सारा रस ही खो जायेगा। आसान हुआ, रस खो गया। बुद्धिमान आदमी को सहज हो तो रस बढ़ेगा लेकिन अहंकारी आदमी को आसान हो तो रस खो जाएगा।

टेढ़े-मेढ़ेपन का रस

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें तपश्चर्या का अधिकतम रस टेढ़े-मेढ़ेपन के कारण है, जब आप अपने को सता रहे होते हैं तब आपको लगता है कि हां, कुछ कर रहे हैं। भूखे हैं, पानी नहीं पी रहे हैं, तब आपको लगता है आप कुछ कर रहे हैं, क्यों ? क्योंकि बड़ा दुर्गम है, बड़ा अस्वाभाविक है; भूख स्वाभाविक है, भूखा रह जाना अस्वाभाविक है; भूख सहज है, भूख के विपरीत लड़ना असहज है। लेकिन जितना असहज हो, धारा के विपरीत हो, उतना हमें लगता है कि हां, कुछ अहंकार को रस आ रहा है। इसलिए तपस्वियों से ज्यादा प्रखर अहंकार और कहीं खोजना मुश्किल है। झोपड़े में रह रहा है तो अहंकार बढ़ेगा, झाड़ के नीचे है तो और बढ़ जाएगा, धूप में खड़ा है तो और भी बढ़ जाएगा। यह सारी-की-सारी चेष्टा सिकन्दर और नेपोलियन की चेष्टा से भिन्न नहीं है। लेकिन हमें दिखती है भिन्न, क्योंकि हमारी समझ नहीं है। इस चेष्टा का एक ही अर्थ है जो असम्भव है वह हम करके दिखा रहे हैं।

अगर आदमी सहज जी रहा हो तो हमें ख्याल में भी नहीं आ सकता है कि वह धार्मिक हो सकता है। सहज आदमी हमारे ख्याल में नहीं आता कि धार्मिक भी हो सकता है। लेकिन कबीर ने कहा है—'साधो सहज समाधि भली।' कारण है कहने का, सहज का अर्थ यह जो महावीर कह रहे हैं वह समझदार आदमी, जो सीधे-सादे, साफ-सुथरे राजमार्ग पर चलता है, इसलिए कि कहीं पहुंचना है, इसलिए नहीं कि कुछ जीतना है। ये दोनों अलग दशाएं हैं, कहीं पहुंचना है तब व्यर्थ श्रम लगाने की कोई आवश्यकता नहीं तब बीच में बाधाएं खड़ी करने की आवश्यकता नहीं लेकिन अगर कहीं पहुंचना नहीं है तो सिर्फ अहंकार अर्जित करना है; यात्रा में तो फिर बाधाएं होनी चाहिए तो आदमी अपने हाथ से भी बाधाएं निर्मित करता है। पैदल जाता है तीर्थयात्रा, मुझसे तीर्थयात्री कहते हैं कि जो मजा पैदल जाकर तीर्थयात्रा करने में है वह ट्रेन में बैठकर जाने में नहीं है। स्वभावतः कैसे हो सकता है; लेकिन जो और आगे बढ़ गये हैं गाड़ी को टेढ़े-मेढ़े उतारने-चलाने में वे जमीन पर साष्टांग दण्डवत करते हुए तीर्थयात्रा करते हैं। उनका वश चले तो शीर्ष-आसन करते हुए भी तीर्थयात्रा करें लेकिन तब जो मजा आयेगा निश्चित ही वह पैदल करने वाले को नहीं आ सकता; क्यों ? वह मजा क्या है वह तीर्थ पहुंचने का

मजा नहीं है वह अहंकार निर्मित करने का मजा है, जो कोई नहीं कर सकता वह मैं कर रहा हूं। धर्म हो, कि धन हो, कि यश हो जो भी हम मार्ग तिरछे-तिरछे चुनते हैं, जानकर; महावीर कहते हैं—वह अधर्म है, असल में अधर्म तिरछा ही होगा सीधा नहीं होगा।

● संचयन : *'आकुल' राजेन्द्र*
जबलपुर

मिलें मुल्ला नसरुद्दीन से—

मुल्ला नसरुद्दीन परम्परा-भक्त था। जाड़े में एक अजीब कट का कोट पहने देख उसके एक मित्र ने पूछा "नसरुद्दीन, यह कोट किस जमाने का पहन रखा है ?"

नसरुद्दीन ने उत्तर दिया, "इसके पहनने की हमारे घर में सदा से परम्परा चली आ रही है। मेरे बाबा ने इसे पहना। मेरे पिताजी ने इसे पहना। अब मैं इसे पहन रहा हूं।"

"और तुमने दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है ?"

"दाढ़ी बढ़ाने की भी हमारे यहां परंपरा है। मेरे बाबा को छः इंच की दाढ़ी थी। मेरे पिताजी की भी छः इंच की दाढ़ी थी।"

"और नसरुद्दीन, तुम अब तक अविवाहित क्यों हो ? क्या वह भी तुम्हारे परिवार की कोई पुरानी परम्परा है ?"

"निश्चय ही", जोश में आकर नसरुद्दीन बोला, "मेरे बाबा जन्म भर अविवाहित रहे, फिर मेरे पिताजी भी। मैं तो केवल परम्परा का पालन कर रहा हूं।"

कृष्ण और गीता

[गीता अध्याय ११ पर भगवान श्री रजनीश जी के ३ जनवरी ७३ से १४ जनवरी ७३ तक—क्रास मैदान, बंबई में १२ प्रवचन हुए हैं। उस क्रम का एक प्रवचन क्रमांक १ ला, श्लोक १ से ८ के अंश को प्रस्तुत किया गया है।

युक्रांद प्रकाशन का ऐसा प्रयत्न है कि प्रति माह गीता के ११ वें अध्याय का एक-एक प्रवचन दिया जाय, अतः प्रेमी सुविज्ञ साधकों से निवेदन है कि 'युक्रांद' के इन बहुमूल्य अंकों को आप संजो कर रखेंगे तो—वर्ष के अन्त में आपके हाथ में गीता अध्याय ११ पूरा का पूरा हो सकेगा। —सं०]

एक पहेली से मैं शुरू करता हूं। वो पहेली है कि प्रभु बिना श्रम किए नहीं मिलता है, और साथ ही जब मिलता है, तो उसे लगता है कि यह श्रम का फल नहीं है; प्रभु की अनुकम्पा है। जो उसे पा लेता है, वो जानता है कि जो मैंने किया था उसका कोई भी मूल्य नहीं और जो मैंने पाया है वो सभी मूल्यों से अतीत है। जिसे मिलता है वह समझ पाता है कि यह प्रसाद (ग्रेस) है, अनुग्रह है। लेकिन जिसे नहीं मिला है अगर वो ये समझ ले कि प्रभु-प्रसाद से मिलता है तो कुछ भी नहीं करना तो उसे प्रसाद भी कभी नहीं मिलेगा।

मनुष्य श्रम करे–श्रम से परमात्मा नहीं मिलता, लेकिन मनुष्य इस योग्य हो पाता है कि प्रसाद की वर्षा उसे मिल पाती है। झील का गड्ढा वर्षा को पैदा करने का कारण नहीं है लेकिन वर्षा हो तो गड्ढे में भर जाती है और झील उपलब्ध होती है। वर्षा पहाड़ पर भी होती है लेकिन पहाड़ पर शिखर रूखे के रूखे रह जाते हैं। वर्षा गड्ढे में भी होती है लेकिन गड्ढा भर जाता है आपूरित हो जाता है। गड्ढा में किसी श्रम से नहीं होती है वर्षा लेकिन गड्ढे का इतना श्रम जरूरी है कि वह गड्ढा बन जाए।

कोई श्रम करके सत्य को नहीं पा सकता है क्योंकि सत्य इतना विराट है और हमारा श्रम इतना क्षुद्र है कि हम उसे श्रम से न पा सकेंगे। और ख्याल रहे हमारे श्रम से मिलेगा वह हमसे छोटा होगा, हमसे बड़ा नहीं हो सकता। जिसे मेरे हाथ गढ़ लेते हैं वो मेरे हाथों से बड़ा नहीं होगा। और जो मेरा मन समझ लेता है वो भी मेरे मन से बड़ा नहीं हो सकता। जिसे मैं पा लेता हूं वो मुझसे छोटा हो जाता है। इसलिये श्रम से न कभी कोई सत्य को पा सकता है, न कोई परमात्मा को पाता, न कभी कोई मोक्ष को पाता और साथ ही यह भी ख्याल में रखें कि बिना श्रम के भी कभी किसी ने नहीं पाया है। ये पहेली है। श्रम से हम इस योग्य बनते हैं कि हमारा द्वार खुल जाए। खुले द्वार में सूरज प्रवेश कर जाता है। खुला द्वार सूरज को पकड़ कर ला नहीं सकता लेकिन खुला द्वार सूरज आता हो तो बाधा नहीं डालता। मनुष्य का सारा श्रम बाधा को तोड़ने के लिए है। इस बात को ख्याल में लें तो यह सूत्र समझ में आयेगा।

इस प्रकार कृष्ण के विभूति योग पर कहे गये वचन सुनकर अर्जुन बोला मुझ पर अनुग्रह करने के लिए परम गोपनीय अध्यात्म वचन, आपके द्वारा जो कहे गये, उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। इसका पहला शब्द समझने जैसा है अनुग्रह। अनुग्रह का अर्थ होता है जिसे पाने के लिए हमने कुछ भी नहीं किया। जिसे पाने के लिए हमने कुछ किया ही नहीं सौदा, उसमें अनुकम्पा कुछ भी नहीं है जिसे पाने के लिये हमने कुछ अर्जित की है सम्पदा, वह हमारे श्रम का पुरुस्कार है। उसमें कुछ प्रसाद नहीं है। अर्जुन कहता है आपके अनुग्रह से मुझे जो कहा गया मेरी कोई योग्यता नहीं थी और मेरा कोई श्रम नहीं था, मेरी कोई साधना भी नहीं थी, मैं दावा कर

सकूं ऐसी मेरी कोई अर्जित सम्पदा भी नहीं। फिर भी आपके अनुग्रह से मुझे जो कहा गया है उसके लिए मैं अनुग्रह से पूर्ण हूं।

इससे लग सकता है कृष्ण ने अर्जुन के साथ पक्षपात किया है। क्योंकि आपका भी कोई श्रम नहीं है आपकी भी कोई साधना नहीं है, श्री कृष्ण अर्जुन को देने पहुंच गये और आपके द्वार को खोजते-खोजते अभी तक नहीं आ रहे हैं, ऐसा लगेगा कि कुछ पक्षपात मालूम होता है। ध्यान रहे जो योग्य है उसे ही यह ख्याल आता है कि मेरी कोई योग्यता नहीं। अयोग्य को सदा ख्याल होता है कि मेरी बड़ी योग्यता है। जो पात्र होता है वही विनम्र होता है, अपात्र तो बहुत उद्दंड होता है। अपात्र तो मानता है कि मैं योग्य हूं। अभी तक मुझे मिला नहीं इसमें जरूर नियति, भाग्य, परमात्मा का कोई हाथ है, सब भांति मैं योग्य हूं और अगर मुझे नहीं मिला तो अन्याय हो रहा है।

पात्र मानता है कि मैं अपात्र हूं इसलिए नहीं मिला तो दोषी मैं हूं और अगर मिलता है तो प्रभु की अनुकम्पा है अनुग्रह है। योग्यता का पहला लक्षण है अयोग्यता का बोध। अयोग्यता का पहला लक्षण है योग्यता का दम्भ, योग्यता का अहंकार। इसमें जिन्हें ख्याल है कि वे पात्र हैं, वे ठीक से समझ लें कि उनसे ज्यादा बड़ा अपात्र खोजना मुश्किल है। और जिनको ख्याल है कि उनकी कोई भी पात्रता नहीं है उन्होंने पात्र बनना शुरू कर दिया। अर्जुन पात्र था इसलिए सहज भाव से कह सका कि मेरी कोई पात्रता नहीं, आपका अनुग्रह है। अपात्र तो अनुग्रही भी नहीं हो सकता उलटे रखे घड़े पर वर्षा भी होती रहे तो घड़ा भर नहीं सकता। उलटा रखा हुआ घड़ा अपात्र है। इसलिए उलटा घड़ा मैं कह रहा हूं ताकि ख्याल में आ सके कि पात्रता भीतर छुपी है किन्तु उलटी है और घड़ा सीधा हो जाए तो पात्र बन जाए। पात्रता कहीं पाने के लिए नहीं जाना है, हम पात्रता लेकर ही पैदा होते हैं।

ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं, ऐसी कोई चेतना ही नहीं है जो प्रभु को पाने की पात्रता लेकर पैदा न होती हो फिर भी परमात्मा हमें मिलता नहीं। उसकी वाणी सुनाई नहीं पड़ती उसके स्वर हमारे हृदय को नहीं छूते, उसका स्पर्श हमें नहीं होता, उसका आलिंगन नहीं मिलता।

हम पात्र हैं लेकिन उलटे रखे हुए और उलटे रहने की सबसे सुलभ जो व्यवस्था है वह दम्भ है, वह अहंकार है। जितना ज्यादा बड़ा हो मन का भाव, उतना ही पात्र उल्टा होता है। अर्जुन ने कहा कि आपका अनुग्रह है, कठिन है क्योंकि अर्जुन के लिए और भी कठिन है।

अगर कृष्ण आपको मिल जाएं तो कृष्ण से आविर्भूत होना आपको कठिन नहीं होगा। लेकिन अर्जुन के कृष्ण हैं मित्र, सखा-साथी उनके कन्धे पर हाथ, गले में हाथ रखके अर्जुन चला है, उठा है—बैठा है गपशप की है। कृष्ण में अनुग्रह को देख लेना मित्र में, जो साथ ही खड़ा हो। और अर्जुन ऊंचा बैठा था कृष्ण सारथी बने नीचे बैठे थे। अर्जुन ऊंचा बैठा था उस क्षण में भी अर्जुन अनुग्रह मान पाता है इसके लिये अत्यंत निरअहंकारी मन चाहिए। इतना विनम्र मन चाहिए कि ऊंचे बैठकर भी अपने को नीचे देख पाता हो। मित्र को भी जो परमात्मा की स्थिति में रख पाता हो। हमें परमात्मा भी मिले तो हम मित्र की स्थिति में रख नहीं सकेंगे ! संगी साथी बनाकर खड़ा कर लेंगे। अर्जुन मित्र को परमात्मा की स्थिति में रख पाता है और जो परमात्मा को इतने निकट देख पाता है, वही देख पाता है। दूर आकाश में बैठे हुए परमात्मा को सिर झुकाना बहुत आसान है, पास पड़ोसी में छिपे परमात्मा को सिर झुकाना बहुत मुश्किल है। पति में, पत्नी में, बेटे में, भाई में छिपे परमात्मा को सिर झुकाना बहुत मुश्किल है। स्वभावतः जो जितने निकट है, उसके साथ हमारे अहंकार का संघर्ष, प्रतिद्वंदिता उतनी ही बड़ी हो जाती है इसलिए यहूदी कहते हैं कि कभी भी कोई पैगम्बर अपने गांव में नहीं पूजा जाता। नहीं पूजे जाने का कारण है क्योंकि इतने निकट है गांव के लिए पैगम्बर कि ये मानना मुश्किल है कि तुम हम से ऊपर हो, असंभव है। इसलिए गांव में तो पैगम्बर को पत्थर ही पड़ेंगे—पूजा बहुत मुश्किल है। अर्जुन कृष्ण को कह सका तुम्हारा अनुग्रह है मेरी कोई पात्रता नहीं थी। ये उसकी पात्रता का सबूत है।

ये एक धार्मिक जगत में प्रवेश करने वाले व्यक्ति की पहली योग्यता है। पहला लक्षण है। मुझ पर अनुग्रह करने के लिए परम गोपनीय अध्यात्म वचन अर्थात उपदेश जो आपके द्वारा कहा गया उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। दूसरी बात—परम गोपनीय अध्यात्म, अध्यात्म प्रेम से भी ज्यादा गोपनीय है, इसे थोड़ा हम समझें। आप जिसे प्रेम करते हैं, चाहते हैं उसके

साथ एकान्त मिल जाए - दूसरी की मौजूदगी खटकती है। दो प्रेमी किसी को भी मौजूद नहीं देखना चाहते। अकेले हो जाना चाहते हैं। ठीक, इसमें अकेले की क्या तलाश है, अकेले में इतना क्या रस है, दूसरे की मौजूदगी क्या बाधा देती है। पहली बात, जिसके साथ हम गहरे प्रेम में हैं, उसमें हम लीन होना चाहते हैं और उसे अपने में लीन कर लेना चाहते हैं। जिसके साथ हम प्रेम में है उसके साथ हम द्वैत को तोड़ देना चाहते हैं अद्वैत हो जाना चाहते हैं। दो न रहें, एक ही रह जाये।

लेकिन अगर तीसरा मौजूद है तो उसके साथ हमारा कोई प्रेम नहीं है। उसकी मौजूदगी अद्वैत को घटित न होने देगी इसलिए प्रेमी एकांत चाहते हैं प्राइवेसी चाहते हैं—अकेलापन चाहते हैं। और तीसरे की जो मौजूदगी है बाधा बन जाएगी और द्वैत बना रहेगा। कोई मौजूद न हो तो दो व्यक्ति लीन हो सकते हैं एक में। इसलिए, प्रेम गोपनीय है, गुप्त है, सार्वजनिक नहीं है। अध्यात्म और भी गोपनीय है क्योंकि प्रेम में तो शायद दो शरीर ही मिलते हैं अध्यात्म में गुरू और शिष्य की आत्मा भी मिल जाती है और जब तक ये मिलन घटित न हो कि गुरू और शिष्य प्रेमी प्रेमिका की तरह आत्मा के तल पर एक न हो जायें तब तक अध्यात्म का संचरण, अध्यात्म का दान असंभव है। इसलिए अध्यात्म गोपनीय है। शरीर भी मिलते हैं तो गुप्तता चाहिए तो फिर जब आत्माएं मिलती हैं तो और भी गुप्तता चाहिये। इसलिए अध्यात्म छिपा छिपाकर दिया गया है चुप चाप दिया गया है मौन में दिया गया गया है। कारण इतना मौन, इतनी चुप्पी इतना एकांत न हो तो वो जो भीतर दो का संवाद है, वह असंभव है। अर्जुन कहता है कि इतनी गोपनीय बात को आपने मुझ पर प्रकट किया ये सिवाय अनुग्रह के और क्या हो सकता है। इस प्रगटीकरण में, इस अभिव्यक्ति, इस गोपनीय मिलन में और भी एक बात विचारणीय है कि घटना घटती है, युद्ध के मैदान पर चारों तरफ बड़ा समूह है और साधारण समूह नहीं, युद्ध के रथ युद्ध के लिए तत्पर हैं। उस युद्ध के लिए तत्पर समूह में भी गोपनीयता घट जाती है। ये मिलन, ये कृष्ण का संवाद अर्जुन को सुनाई पड़ जाता है कृष्ण अनुग्रह कर पाते हैं।

एक बात और ख्याल में ले लेनी चाहिए और वो ये कि दो शरीरों को मिलना हो तो भौतिक अर्थों में एकांत चाहिए। दो आत्माओं को मिलना हो

तो भीड़ में भी मिल सकती हैं। भौतिक अर्थों में फिर एकांत से कोई अर्थ नहीं है। इस भीड़ में भी दो आत्माओं का मिलन हो सकता है क्योंकि भीड़ तो शरीर के तल पर है। ये बहुत विचार की बात रही, जिन्होंने भी गीता पर अध्यन किया है उन्हें भी मन में यह विचार उठता ही रहा है, यह प्रश्न जमता ही रहा है कि युद्ध के मैदान पर भीड़ में, युद्ध के लिए तत्पर लोगों के बीच, कृष्ण को भी कहां की जगह मिली गीता का संदेश को कहने की। और ये बहुत सुविचारित मालूम पड़ता है, अध्यात्म समूह के बीच भीड़ में भी एकांत पा सकता है। अध्यात्म बाजार के बीच भी अकेला हो सकता है और अध्यात्म युद्ध के क्षण में भी घट सकता है। क्योंकि युद्ध, बाजार, शरीरों की भीड़ सब बाहर हैं। अगर भीतर तत्परता हो, पात्रता हो और अगर भीतर ग्रहण करने की क्षमता हो, लीन होने की, विनम्र होने की, डूबने की, चरणों में गिर जाने की भावना हो तो अध्यात्म कहीं भी घटित हो सकता है : युद्ध में भी। अध्यात्म की इस बात को कृष्ण ने जिस अनूठे ढंग से गीता में जगत को जो दिया है वह कोई दूसरा शास्त्र नहीं दे सका। इसलिये गीता इतनी रुचिकर हो गई और इतनी मन पर छा गई तो उसका कारण है। उपनिषद् हैं वनों के एकांत में, शांति में, गुरू और शिष्य के बीच बड़े ध्यान के क्षण में संवादित हैं। बाइबिल है बहुत एकान्त में चुने हुए शिष्यों से कही गई बातें हैं। लेकिन गीता घने संसार के बीच दिया गया संदेश है और युद्ध से ज्यादा घना संसार क्या होगा। कहीं भी अध्यात्म घटित हो सकता है अगर पात्र सीधा हो, और वो जो गोपनीय है अधिकतम गोपनीय है जो सबके सामने नहीं कहा जा सकता वो भी कहा जा सकता है, अगर पात्र मौन, शांत स्वीकार करने को तैयार हो। सिर्फ भौतिक अकेलेपन का अर्थ होता है कोई और मौजूद नहीं। अध्यात्मिक अकेलेपन का अर्थ होता है आप मौजूद नहीं इसे ठीक से समझ लें। भौतिक भीड़ का अर्थ होता है बहुत लोग मौजूद हों, अध्यात्मिक एकांत का अर्थ होता है शिष्य मौजूद न हो गुरु तो गैर मौजूदगी का नाम ही है। जिससे हम बात ही न करें—गुरु का तो अर्थ ही है कि जो गैर मौजूद हो गया जो उपस्थित नहीं है। जो दिखाई पड़ता और भीतर शून्य है। जब शिष्य भी गैर मौजूद हो जाए, इतना डूब जाए कि भूल जाए अपने को कि मैं हूं तो अध्यात्मिक एकांत घटित होता है। और इस एकांत में ही वे गोपनीय सूत्र दिये जा सकते हैं; जो किसी और तरीके से दिये जाने का कोई भी उपाय नहीं। तो अर्जुन ने कहा कि

जो अत्यन्त गोपनीय है वह भी—अनुग्रह करके तुमने मुझे कहा। उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। इसे ख्याल कर लें।

अज्ञान का नष्ट हो जाना यहां ज्ञान का पैदा हो जाना नहीं है। ज्ञान तो है अनुभव, अज्ञान तो नष्ट हो सकता है गुरु के वचन से भी, लेकिन नकारात्मक। अर्जुन कह रहा है मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। वो यह कह रहा है कि अब तक जो मान्यताएं थीं वे टूट गईं अब तक मैं जैसा सोचता था अब नहीं सोच पाऊंगा। आपने जो कहा उसने मेरे विचार बदल दिए, आपने जो मुझे दिया उससे मेरा मन रूपांतरित हो गया, मैं बदल गया हूं। मेरा अज्ञान टूट गया लेकिन अभी ज्ञान नहीं हो गया। अभी बीमारी तो हट गई है लेकिन अभी स्वास्थ्य का जन्म नहीं हुआ। अभी नकारात्कक रूप से बाधाएं मेरी टूट गईं लेकिन अभी (पाजिटिविटी) विधायक रूप से मेरा आविर्भाव नहीं हुआ। ये काफी कीमती है क्योंकि बहुत से लोग इस तरह के अज्ञान मिटने को ही ज्ञान समझ लेते हैं। शास्त्र हैं, सदवचन हैं, सदगुरु हैं, उनके वचनों को लोग इकट्ठा कर लेते हैं। सोचते हैं ज्ञान हो गया, और सोचते हैं सुन लिया क्योंकि गीता कंठस्थ है, उसके वचन याद हैं, उपनिषद् ओंठ पर रखे हैं, ज्ञान हो गया। ध्यान रहे अर्जुन कहता है अज्ञान नष्ट हो गया, अब तक जो मेरी मान्यता थी अज्ञान से भरी हुई, वो टूट गई, लेकिन अभी ज्ञान नहीं हुआ। क्योंकि ज्ञान तो तभी होता है जब मन अनुग्रह कर ले। ये कृष्ण ने जो कहा है उस पर भरोसा आ गया। और कृष्ण जैसे लोग भरोसे के योग्य होते हैं। उनकी मौजूदगी भरोसा पैदा करवा देती है, उनका खुद का आनंद, उनका खुद का मौन, उनकी शांति, उनकी शून्यता छा जाती है, अच्छादित कर लेती है, उनकी आंखें उनका होना पकड़ लेता है चुम्बक की तरह, खींच लेता है प्राणों को—भरोसा आ जाता है। लेकिन ये भरोसा ज्ञान नहीं है, ये भरोसा हमारी भ्रान्त धारणाओं को तोड़ देने के लिए जरूरी है लेकिन भ्रान्त धारणाओं का टूट जाना ही सत्य का आ जाना नहीं है। पंडित ज्ञानी नहीं है, पंडित अज्ञानी नहीं है। पंडित ज्ञानी भी नहीं है—पंडित अज्ञानी और ज्ञानी के बीच है। अज्ञानी वो है जिसे कुछ भी पता नहीं, पंडित वो है जिसे सब कुछ पता है। और ज्ञानी वो है जिसके पता में और जिसके अनुभव में कोई भेद नहीं। जो जानता है—जिसकी जानकारी है वो उसका अपना निजी अनुभव भी है। वो उधार नहीं जानता—किसी ने कहा है ऐसा नहीं जानता, खुद ही जानता है। अपने से जानता है।

अभी अर्जुन को जो जानकारी हुई वो कृष्ण के कहने से हुई। अभी कृष्ण ऐसा कहते हैं; और कृष्ण पर अर्जुन को भरोसा आया इससे अर्जुन कहता है मेरा अज्ञान टूट गया : लेकिन अभी मैं नहीं जानता हूं अभी तुम कहते हो। इसमें अगर कृष्ण थोड़ा हट जायें अलग अर्जुन के संदेह वापिस लौट आयेंगे। इससे अगर कृष्ण खो जायें तो अर्जुन फिर वापिस वहीं पहुंच जाएगा जहां वो गीता के प्रारम्भ में था इसमें देर नहीं लगेगी और अगर ईमानदार होगा तो जल्दी पहुंच जाएगा अगर बेईमान होगा तो थोड़ी देर लगेगी। क्योंकि फिर वो शब्दों को ही दोहराता रहेगा, घोंटता रहेगा और अपने को समझाता रहेगा कि मुझे मालूम है। लेकिन अर्जुन ईमानदार है। **और इस जगत में सबसे बड़ी ईमानदारी अपने प्रति ईमानदारी है। आप दूसरे को धोखा देते हैं इससे कुछ बहुत बनता बिगड़ता नहीं—अच्छा नहीं है, लेकिन बहुत बनता बिगड़ता नहीं है थोड़ा पैसे का नुकसान पहुंचा देंगे कुछ और करेंगे। लेकिन जो धोखा आप अपने को दे सकते हैं उससे आपका पूरा जीवन मिट्टी हो जाता है—और हम धोखा देते हैं। सबसे बड़ा धोखा जो हम अपने को देते हैं वो ये है कि बिना स्वयं जाने हम मान लें कि हमने जान लिया है।**

अगर कोई आप से पूछे कि ईश्वर है तो आप चुप नहीं रह पायेंगे। या तो कहेंगे कि है या कहेंगे नहीं है। ये न कह पायेंगे कि मुझे पता नहीं है। अगर आप ये कह पायें कि मुझे पता नहीं है तो आप ईमानदार आदमी हैं। अगर आप ये कहें कि है और लड़ने झगड़ने को तैयार हो जायें और बिना कुछ अनुभव के—आप बेईमान हैं : अगर आप कहें नहीं है और तर्क करने को तैयार हो जायें बिना किसी अनुभव के—तो आप बेईमान हैं। जिनको हम आस्तिक और नास्तिक कहते हैं—वो बेईमानी की दो शक्लें हैं। ईमानदार आदमी कहेगा मुझे पता नहीं है मैं कैसे कहूं कि है, मैं कैसे कहूं कि नहीं है। कोई कहता है कि है, कोई कहता है कि नहीं है, कभी एक पर भरोसा आ जाता है अगर आदमी बलशाली हो। बुद्ध जैसा आदमी आपके पास खड़ा हो तो भरोसा दिला देगा कि ईश्वर वगैरह कुछ भी नहीं है। यह बुद्ध की वजह है। महावीर जैसा आदमी आपके पास खड़ा हो तो भरोसा दिलवा देगा कि ईश्वर वगैरह सब बकवास है। और कृष्ण जैसा आदमी पास खड़ा हो तो आस्था आ जाएगी कि ईश्वर है और जीसस जैसा आदमी पास खड़ा हो तो आस्था आ जाएगी कि ईश्वर है। लेकिन आपका अपना अनुभव कोई भी नहीं है।

लेकिन कृष्ण के कारण जो झलक आती है वो भी उधार है, बुद्ध के कारण जो झलक आती है वो भी उधार है। उधार झलकों से अज्ञान मिट जाता है—लेकिन ज्ञान अपनी ही झलक से पैदा होता है। इसलिए अर्जुन कहता है कि आपने जो मुझे कहा उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है, क्योंकि हे कमलनेत्र ! मैंने भूतों की उत्पत्ति और पीड़ा आपसे विस्तार पूर्वक सुनी। आपका अविनाशी प्रभाव भी सुना। हे परमेश्वर आप अपने को जैसा कहते हैं वैसे ही हैं ऐसा ही मैंने अनुभव किया। ऐसा ही ठीक मुझे समझ में आया, कि आप जैसा कहते हो वैसा ही है, ऐसी मेरी श्रद्धा बनी। परन्तु हे पुरुषोत्तम—और ये परन्तु विचारणीय है—नहीं तो बात खतम हो गई। अर्जुन कहता है जैसा आप कहते हो ऐसा ही है—ऐसी मेरी श्रद्धा हो गई—अब बात खतम हो जानी चाहिए थी। जब श्रद्धा आ गई तो अब चुप हो जाओ—गीता समाप्त हो जानी चाहिए। लेकिन परंतु का क्या अर्थ है। अब यहां बात पूरी हो गई। हम यहां अगर होते तो गीता यहां समाप्त हो गई होती। हम इस जगह रुक जाते आकर, श्रद्धा यहां आ गई, मंदिर में पूजा कर लेते हैं, शास्त्र को सिर झुका लेते हैं, गुरू के चरणों में फूल चढ़ा आये—यहां बात खतम हो गई। हमें सब याद है, सिद्धांतों का पता है, शास्त्र हमारे मन पर है अब और क्या बाकी बचा। अभी कुछ भी नहीं हुआ, अभी नौका किनारे से भी नहीं छूटी। इसलिए अर्जुन कहता है परंतु हे पुरुषोत्तम आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, सत्य, बल-वीर्य और आपके रूप को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं। ये तो आपने अपनी आंखों से जो देखा है वो मुझसे कहा, ये मेरे कानों ने सुना है। लेकिन आपकी आंखों से देखा गया है ये अब अपनी ही आंख से देखना चाहता हूं—और जब तक मैं न देख लूं तब तक आप भरोसे योग्य हैं—मैं भरोसा करता हूं—लेकिन जब तक मैं न देख लूं तब तक ज्ञान का जन्म नहीं होगा।

शब्द पर मत रुक जाना, शब्द पर रुकने वाला भटक जाता है। और सारी दुनिया शब्द पर रुक गई है, कोई कुरान के शब्द पर रुका है वो अपने को मुसलमान कहता है—कोई गीता के शब्द पर रुका है वो अपने को हिन्दू कहता है—कोई बाइबिल के शब्द पर रुका है वो अपने को ईसाई कहता है—लेकिन ये शब्दों पर रुके हुए नाम हैं। दुनिया में सब संप्रदाय शब्दों के संप्रदाय हैं—धर्म का तो कोई संप्रदाय हो नहीं सकता। धर्म शब्द

नहीं—अनुभव है। और अनुभव—हिन्दू—मुसलमान—ईसाई नहीं होता। अनुभव ऐसा है निखालिस—एक होता है—जैसे कि आकाश हो।

कृष्ण से अर्जुन ने ठीक बात पूछी। कहा कि आस्था पूरी है जो आप कहते हैं—आप कहते हैं ठीक ही कहते होंगे, और ये कहने की कोई भी गुंजाइश नहीं कि आप गलत कहते हैं। आपने मुझे ठीक-ठीक समझा दिया। जैसा आपने कहा है, वैसा ही है। लेकिन अब मैं अपनी आंख से देखना चाहता हूं और जो शिष्य अपने गुरु से ये न पूछे कि आंख से देखना चाहता हूं वो शिष्य ही नहीं है। गुरु के शब्द मान कर जो बैठा रहे और उन्हें घोंटता रहे और मर जाय, वो शिष्य नहीं है, और जो गुरु अपने शिष्य को शब्द रटाने में लगा दे, वो गुरु भी नहीं है।

कृष्ण प्रतीक्षा ही कर रहे होंगे कि कब अर्जुन ये पूछे। अब तक तो जो बातचीत थी वो बौद्धिक थी। अब तक अर्जुन ने जो सवाल उठाए थे, वो बुद्धि तक थे, विचारपूर्ण थे—उनका निरसन कृष्ण करते चले गए। जो अर्जुन ने कहा वो गलत है ये बुद्धि और तर्क से कृष्ण समझाते चले गए—निश्चित ही कृष्ण प्रतीक्षा करते रहे होंगे कि अर्जुन पूछे, वो क्षण आए कि वो कहे कि मैं अब आंख से देखना चाहता हूं। आम तौर से गुरु डरेंगे जब आप कहेंगे कि अब मैं आंख से देखना चाहता हूं। तब गुरु कहेंगे कि श्रद्धा रखो, भरोसा रखो, संदेह मत करो। लेकिन ठीक गुरु ये प्रतीक्षा करेगा कि किसी दिन आप हिम्मत जुटायें और कहें कि अब मैं देखना चाहता हूं। अब शब्दों से नहीं चलेगा, अब विचार काफी नहीं हैं। अब तो प्राण ही उससे एक न हो जायें, मेरा ही साक्षात्कार न हो तब तक अब कोई शांति नहीं है। अर्जुन ने कहा—हे परमेश्वर, हे कमलनेत्र, हे परमात्मा अब मैं आपके विराट को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं। ये प्रश्न अति दुस्साहस का है। इससे बड़ा कोई और दुस्साहस जमीन पर नहीं है—क्योंकि विराट को अगर आंख से देखना हो तो बड़े उपद्रव हैं। क्योंकि हमारी आंख तो सीमा को ही देखने में सक्षम है। हम तो जो भी देखते हैं वो रूप है, आकार है। हमारी आंख ने निराकार तो कभी देखा नहीं, हमारी आंख की क्षमता भी नहीं निराकार को देखने की। हमारी आंख बनी ही है आकृति को देखने के लिए। तो विराट को देखने के लिए ये आंख काम नहीं करेगी। सच तो ये है कि इन आंखों की तरफ से बिल्कुल अंधा हो जाना पड़ेगा, ये आंख खो

देनी पड़ेगी। ये आंख बंद ही कर लेनी पड़ेगी और इन दो आंखों से जो शक्ति बाहर प्रवाहित हो रही है, उस शक्ति को किसी और आयाम में प्रवाहित करना होगा, जहां कि नई आंख उपलब्ध हो सके। जिससे मैं देख रहा हूं उन आंखों के द्वारा। ध्यान रहे, हम आंख से नहीं देखते, आंख के द्वारा देखते हैं। आंख के पीछे खड़े हैं हम, आंख हमारी खिड़की है, जिससे हम देखते हैं। इस खिड़की से तो विराट को देखा नहीं जा सकता, क्योंकि खिड़की भी विराट पर ढांचा दिखा देगी। इस खिड़की के कारण विराट का आकार बन जाता है. आप अपनी खिड़की से आकाश को देखते हैं, आकाश भी लगता है कि खिड़की के ही आकार का है। उतना ही दिखाई पड़ता है जितना खिड़की का आकार है। इन आंखों से तो विराट देखा नहीं जा सकता। इसलिए बड़ी हिम्मत की जरूरत है, अंधा हो जाने की। इन आंखों से तो सारी शक्ति को खींच और उस दिशा में शक्ति को प्रवाहित करना पड़े जहां कोई खिड़की नहीं है—खुला आकाश है। तब विराट देखा जा सकता है। उस घटना को मैं तीसरा नेत्र (थर्ड आई) या दिव्य चक्षु कोई भी नाम दिया जा सकता है। वो तीसरी आंख खुल जाए—दिव्य चक्षु, उसके बिना परमात्मा के प्रत्यक्ष रूप को नहीं देखा जा सकता। तब जो भी हम देखते हैं वो परोक्ष है। जो भी हम देखते हैं—वो अनेक-अनेक पर्दों के पीछे से देखते हैं। उसे सीधा नहीं देखा जा सकता, हमारे पास जो उपकरण हैं, वे भी उसे परोक्ष करते हैं। इन उपकरणों को छोड़कर, इन्द्रियों को छोड़कर, आंखों को छोड़कर किसी और दिशा से भी देखना हो सकता है—तो पहला तो दुस्साहस अंधा होने का। क्योंकि इन आंखों से देखना हो तो तीसरे नेत्र पर दृष्टि नहीं पहुंचती।

दूसरा दुस्साहस विराट को देखना बड़ा खतरनाक है। जैसे कि कोई गहरे में—गड्ढ में झांके तो घबड़ा जाए—हाथ-पैर कंपने लगें—सुध भूल जाए। कभी किसी पहाड़ की चोटी पर किनारे—बहुत किनारे बैठकर गड्ढे में झांक कर देखा है—तो जो भय समा जाए—मृत्यु दिखाई पड़ने लगे उस गड्ढ में। लेकिन वो गड्ढ तो कुछ भी नहीं है। परमात्मा तो अनंत गड्ढा है। विराट शून्य है—जहां सब आकार खो जाते हैं—जहां फिर कोई कल और सीमा नहीं है। जहां पर दृष्टि चलेगी तो फिर रुकेगी नहीं क्योंकि कोई जगह न आएगी कि रुक जाए। वहां आपको घबड़ाहट पकड़ेगी और एक संताप पकड़ेगा और लगेगा कि मैं मरा, मिटा मैं गया। विराट के

साथ दोस्ती बनाने का मतलब ही है कि खुद को मिटाना है। तो पहला काम तो है अंधा होना पड़े, तब वो आंख खुले। दूसरा काम मरने की तैयारी हो तब उसका स्पर्श हो।

इसलिए कीर्कगार्ड ने, ईसाई रहस्यवादी संत ने कहा है कि, परमात्मा को खोजना, सबसे बड़ी खतरे की खोज है। सबसे बड़ा जुआ है। जीवन को दांव पर लगाने का उपद्रव है। यह ऐसा ही है जैसे झील सागर को खोजने जाए—तो मिटने को जा रही है, जहां सागर को पाएगी-मिटेगी; फिर लौटना भी मुश्किल हो जाएगा। सीमा असीम को खोजती है, क्षुद्र विराट को खोजता हो, आकार निराकार को खोजता हो तो मृत्यु की खोज है। इसलिए बुद्ध ने ईश्वर नाम ही उसे नहीं दिया। बुद्ध ने कहा : वो है महा-शून्य। ईश्वर नाम मत दो। क्योंकि ईश्वर नाम देने से हमारे मन में आकृति बन जाती है। इससे बुद्ध ने कहा : ईश्वर की बात ही मत करो—वो है महाशून्य। इसलिए बुद्ध से जब लोगों ने पूछा कि क्या वो परम जीवन है, तो बुद्ध ने कहा कि जीवन की बात मत करो, वो है परम मोक्ष, वो है निर्वाण, सबका मिट जाना। बुद्ध के पास से भी लोग भाग खड़े होते। हमारे इस बड़े आध्यात्मिक मुल्क में भी बुद्ध के पैर नहीं जम सके। उसका कारण एक ही था कि बुद्ध के पास भी जाना एक खतरा था। बुद्ध के पास भी वो खाई थी। बुद्ध के पास जाने का मतलब था—परम शून्य में जाना। बुद्ध में झांकना बुद्ध से दोस्ती बनाना एक परम शून्य के साथ दोस्ती बनाना था। बुद्ध आकृति की बात ही न करते थे, वे कहते मिटना—समाप्त होना। सागर में कूदने की बात ही न करो, वे कहते बूंद मिटने की तैयारी रखे तो सागर में ही है। तो कृष्ण से पूछा जा रहा है : एक परम खतरनाक सवाल अर्जुन के द्वारा कि मैं तुझे अपनी ही आंखों से देखना चाहता हूं—प्रत्यक्ष।

ये खतरनाक सवाल है, इसलिए अर्जुन एक शर्त भी रख देता है। वो कहता है—हे महाप्रभो ! मेरे द्वारा वह आपका रूप देखा जाना शक्य है ऐसा यदि मानते हैं, तो हे योगेश्वर ! आप अपने अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइए।

भय अर्जुन को पकड़ा होगा। वो जो कह रहा है, खतरनाक है। वो जो देखना चाहता है, वो मनुष्य की आखिरी आकांक्षा है। वो

असंभव चाह है। और मनुष्य, पूरा मनुष्य उसी दिन हो पाता है, जिस दिन वो असंभव चाह उसे पकड़ ले, तब तक हम कीड़े-मकोड़े हैं। हमारी चाह में और चानवरों की चाह में कोई अन्तर नहीं है। हम भी धन इकट्ठा करते हैं, जानवर भी परिग्रह करते हैं—थोड़ा करते हैं हमसे। इसका मतलब है कि वो हमसे थोड़े छोटे जानवर हैं, हम थोड़ा ज्यादा करते हैं—वो एक मौसम का करते हैं तो हम पूरी जिंदगी का करते हैं—तो हमारा जानवरपन थोड़ा विस्तीर्ण है। वे भी काम-वासना की तलाश कर रहे हैं—स्त्री, पुरुष को खोज रही है, पुरुष, स्त्री को खोज रहा है। हम भी वही कर रहे हैं। तो पशु में और हममें फर्क क्या है, हमारी भी वासना वही है जो पशु की है। लेकिन एक वासना परमात्मा की वासना है जो मनुष्य की है। कोई पशु विराट को नहीं खोज रहा है। और जब तक आप विराट को नहीं खोज रहे हैं, तब तक जानवर की, पशु की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर रहे हैं।

मनुष्य विराट की खोज है, असंभव की चाह है। सभी पशु अपने को बचाने की कोशिश में लगे हैं, कोई भी पशु मरना नहीं चाहता। कोई पशु मिटना नहीं चाहता, सिर्फ मनुष्य में कोई मनुष्य ऐसा होता है जो अपने को दांव पर लगाता है अपने को मिटाता है ताकि परम को जान सके। अकेला मनुष्य है जो अपने जीवन को भी दांव पर लगाए। जीवन को दांव पर लगाने का साहस—असंभव की चाह—विराट को आंखों से देखने की वासना, ये अभीप्सा, अर्जुन को लगा होगा पता नहीं मेरी योग्यता भी है या नहीं, ये संभव भी है या नहीं। मैं अभी उस जगह आ गया हूं या नहीं—जहां ऐसा सवाल पूंछ सकूं। ये सवाल कहीं मैंने जरूरत से ज्यादा तो नहीं पूंछ लिया। ये सवाल कहीं मेरी सीमा का अतिक्रमण तो नहीं कर जाता। कहीं ऐसा तो नहीं है कि कृष्ण अगर इसे पूरा करें, तो मैं मुसीबत में पड़ जाऊं। इसलिये उसने कहा कि वह आपका रूप देखा जाना शक्य हो, संभव हो, योग्यता हो मेरी, पात्रता हो मेरी, ऐसा मुझे आप मानते हों क्योंकि यहां मेरी मान्यता क्या काम करेगी। जिसे हमने जाना नहीं, उसके संबंध में पात्र हूं—यह भी मैं कैसे जान सकता हूं। बिना किए पात्रता का भी तो कोई पता नहीं चलता। जो हमने किया भी नहीं, वह मैं कर सकूंगा या नहीं कर सकूंगा, उसे जानने का उपाय—मापदंड भी तो कोई नहीं। यह सिर्फ अर्जुन पूछता है—लेकिन उत्तर मिले भी, इसका कोई आग्रह नहीं करता। और जो शिष्य

इसका आग्रह करता है कि उत्तर मिलना ही चाहिए, उसे पता ही नहीं है कि वो बचकानी बात कर रहा है।

प्रश्न पूछा जा सकता है लेकिन उत्तर गुरु पर ही छोड़ देना होगा। पता नहीं अभी समय आया या नहीं। अभी फल पका या नहीं। अभी घड़ी पकी या नहीं। अभी वो जगह आई या नहीं जहां तीसरी आंख खुल सके। और अगर खुल भी सके तो मैं झेल भी सकूंगा—उस विराट को या नहीं।

विराट को देखना, उसे झेलना, उसे आत्म सात करना—आपके हाथ में नहीं। ये हो सकेगा मुझसे या नहीं—ध्यान रखना अर्जुन ने बड़ा समझ की बात कही है कि आप ऐसा मानते हैं तो ही मुझे प्रत्यक्ष करायें—अन्यथा मैं रुक सकता हूं। जल्दी नहीं करूंगा, धैर्य रख सकता हूं—प्रतीक्षा करूंगा, और जब समझें, कई बार ऐसा हुआ है कि शिष्यों को वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, इसलिए नहीं कि गुरू को उत्तर पता नहीं था, इसलिए भी नहीं कि गुरू कुछ मजा ले रहा था कि काफी समय व्यतीत हो जाए और आप उसकी सेवा स्तुति करते रहें। सिर्फ इसलिए कि शिष्य जब तक इसके योग्य न हो जाए कि झांक सके अनंत गड्ड में—विस्तार भूमि में झांक सके—-नहीं तो होगा क्या—-अगर अर्जुन थोड़ा भी कच्चा हो तो पागल होकर वापिस लौटेगा—विक्षिप्त होकर। अनेक साधक विक्षिप्त हो जाते हैं, जल्दबाजी के कारण—पागल हो जाते हैं। और साधारण पागल का तो इलाज हो जा सकता है, साधक अगर पागल हो जाए तो मनोचिकित्सक के पास इलाज का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि उसकी बीमारी शरीर की बीमारी नहीं है, उसकी बीमारी मन की भी बीमारी नहीं है। उसकी बीमारी मन के जो अतीत है, उसके संपर्क से पैदा हुई है। उसके इलाज का कोई उपाय नहीं है।

आपने उन फकीरों के संबंध में सुना होगा, जिनको हम मस्त कहते हैं। सूफी जिनको मस्त कहते हैं। मस्त का मतलब इतना है कि अभी कुछ कच्चा है आदमी और कूद गया। तो देख तो लिया उसने लेकिन सब अस्त-व्यस्त हो गया। उस अराजक में झांककर वह भी अराजक हो गया। सब अस्त-व्यस्त हो गया, वापिस लौटना मुश्किल हो गया। अगर वो वापिस भी लौट आए तो जो उसने देखा है वह उसे भूल नहीं सकता। जो उसने

जाना है, वो उसका पीछा करेगा। जो उसने अनुभव कर लिया है, वो उसके रोयें—रोयें में समा गया, अब उससे छुटकारा नहीं है। और अब वो उसे बैचेन करेगा, वो उसे जीने नहीं देगा, वो मुश्किल में डाल देगा। विक्षिप्तता घटित होती है अगर साधक जल्दी करे। और सभी साधक जल्दबाजी करने की कोशिश करते हैं। क्योंकि जो भी उसकी तलाश में है, प्यासा है, चाहता है जल्दी पानी मिल जाए। लेकिन जल्दी मिला हुआ पानी हो सकता है जहर साबित हो। जल्दी जहर है।

हो सकता है अभी प्यास ही न थी इतनी और पानी का सागर ऊपर टूट पड़े तो भी मुसीबत हो जाए। फिर हमारी आदत सागर के पानी पीने की नहीं है। सागर का पानी मिल भी जाये तो हम प्यासे मर जायेंगे। हम तो पानी—छोटे-छोटे कुयें-गड्ढे खोदकर पीने की हमारी आदत है। वहीं हमारा तालमेल भी है। असल में विराट का संपर्क अस्त-व्यस्त कर जाता है। नीत्से को ऐसा हुआ। जर्मन विचारक नीत्से उसी तल की चेतना के थे जिसमें बुद्ध-महावीर थे, लेकिन विक्षिप्त हो गया वो आदमी। और विक्षिप्त होने का एक ही कारण था कि इस आदमी ने अति आग्रह किया है अनंत में उतर जाने का। सब सीमाओं को तोड़कर, विचार की, शब्द की, शास्त्र की, सिद्धांत की, समाज की—सब सीमाओं को तोड़कर नीत्से ने हिम्मत जुटाई अनंत में छलांग लगाने की बिना गुरु के। कभी-कभी बुद्ध जैसा व्यक्ति भी बिना गुरु के वापिस लौट आया है, लेकिन शायद पीछे अनंत जन्मों की साधना है, नीत्से ऐसा लगता है कि बिल्कुल अपरिपक्व—विराट के सामने, आमने-सामने खड़ा हो गया। नीत्से ने कहा है जैसे समय से हजारों मील ऊपर मैं खड़ा हूं। समय से हजारों मील ऊपर—कोई मतलब नहीं होता इसका। क्योंकि समय और मील का क्या संबंध? लेकिन मतलब एक है कि समय के बाहर खड़ा हूं, हजारों मील बाहर खड़ा हूं—और देख रहा हूं विराट अराजकता को। उसके बाद नीत्से फिर कभी स्वस्थ नहीं हो सका। उसके बाद जो भी उसने लिखा है—वे सब हीरे हैं—ऐसे हीरे मुश्किल से मिलते हैं—लेकिन सब हीरे विक्षिप्त मालूम पड़ते हैं, जैसे सब हीरे जहर में बुझाए गए हों। उसकी वाणी में झलक बुद्ध की है और साथ में पागलपन भी। कहीं-कहीं आकाश झांकता है विराट का और सब तरफ पागलपन दिखाई पड़ता है। क्या हुआ इसे? इसने कुछ देखा जरूर है—लेकिन शायद अभी उचित न था देखना, समय के पहले देख लिया। नीत्से पागल ही मरा।

अर्जुन डरा होगा, जो मैं पूछता हूं। छोड़ दिया कृष्ण पर ही। यदि शक्य हो, यदि आप समझें कि मेरा देखा जाना शक्य है, तो अपने अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन करायें, अब मुझे कहें मत कुछ। अब मुझे दिखाइए। अब मैं स्वाद लेना चाहता हूं। सुनना नहीं चाहता अब मैं हो जाना चाहता हूं। अनुभव लेना चाहता हूं कि मैं भी वही जान सकूं, जो आप जानते हैं। वही जान सकूं, जो आप हैं।

इस प्रकार अर्जुन के प्रार्थना करने पर कृष्ण ने कहा, हे पार्थ! मेरे सैकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख।

अर्जुन बिल्कुल तैयार था और उसके रुकने की तैयारी धर्म का लक्षण है। अधैर्य रुग्ण चित्त का लक्षण है। वो कहता है मैं रुक सकता हूं, प्रतीक्षा कर सकता हूं जब समझें योग्य हूं तब तक राह देख सकता हूं, वो उसी क्षण योग्य हो गया। इतना धैर्य योग्यता है—जो कहता है अभी दिखा दें, अभी हो जाए, जल्दी हो जाए। मेरे पास लोग आते हैं वो कहते हैं कि ध्यान कितने दिन करें कि परमात्मा का अनुभव हो जाये। कितने दिन, कितने जन्म पूछें तो संगत मालूम पड़ता है—वे पूछते हैं कितने दिन! मैं उनसे पूछता हूं--चौबीस घंटे करना है? कहते हैं--नहीं! आधा घंटा, पन्द्रह मिनिट वक्त निकाल सकते हैं। मैं कहता हूं पन्द्रह मिनिट को मौन हो जाइए, वे कहते हैं किसी एकाध क्षण को पन्द्रह मिनिट में मौन हो जाए तो हो जाए, पक्का नहीं है, तब कितने जन्म लगेंगे। और अगर मैं उनसे कह दूं--एक साल, दो साल, तो ऐसा लगता है ये उनके बस के बाहर की बात है। हो सकता है कोई उनको कह दे कि १०-१५ दिन में हो जाएगा, तो उनको भरोसा आता है। इतना अधीर चित्त हो, तो हम वही चीजें पा सकते हैं जो १०-१५ दिन में मिलती हैं। फिर वे चीजें नहीं पा सकते जो जन्मों-जन्मों में मिलती हैं। फिर मौसमी पौधे लगाने चाहिए, जो लगाए नहीं कि दो चार दिन में फूल देना शुरू कर दें। लेकिन बस मौसम में ही रौनक रहती है, फिर हमें उन वृक्षों की आशा छोड़ देनी चाहिए जो सदियों तक लगते हैं। उनकी हमें आशा छोड़ देनी चाहिए। क्योंकि इतना अधैर्य हो तो जड़ें गहरी नहीं जा सकतीं। और जड़ें जितनी गहरी जायें, वृक्ष उतना ऊपर जाता है। जितना होता है वृक्ष ऊपर उतना ही जड़ों में होता है

नीचे—क्योंकि जो मौसमी पौधा है, उसकी कोई जड़ तो होती नहीं। जितने ही ऊपर होता है, उतनी देर टिकता है। इसलिए बहुत लोग ऐसा ही सोचते हैं--जैसा मौसमी पौधा होता है, दो-चार दिन टिकता है, फिर खो जाता है। दो-चार दिन कहते हैं—ध्यान से बड़ी शांति मिल गई, फिर दो-चार दिन के बाद उनका पता नहीं चलता। बड़ी शांति मिल रही है! वो मौसमी फूल था, उसकी कोई जड़ नहीं थी। अधैर्य की कोई जड़ें नहीं हैं, धैर्य चाहिए। और अर्जुन ने जो यह कहा कि अगर शक्य हो--मुझे कुछ पता नहीं, और मुझे पता हो भी नहीं सकता। जिस अनंत में मैं झांका नहीं हूं, उसमें झांक सकूंगा, ये मैं कैसे कहूं। आप ही तय कर लें—जो शिष्य छोड़ता है गुरु पर इतनी हिम्मत से, वो समर्पण है। वो इसी क्षण ही तैयार हो गया, इसलिए कृष्ण ने अर्जुन की योग्यता की बात ही नहीं की—तत्क्षण कहा कि ठीक है तो तू मेरे अलौकिक रूपों को देख।

और हे भरतवंशी अर्जुन! मेरे में आदित्यों को अर्थात् अदिति के द्वादश पुत्रों को और आठ वसुओं को, एकादश रुद्रों को तथा दोनों अश्विनी कुमारों को और उनचास मरुद्गणों को देख तथा और भी बहुत से पहिले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख। और हे अर्जुन! अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित हुए चराचर सहित सम्पूर्ण जगत को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता है, सो देख।

इसमें कुछ बातें समझने जैसी हैं: पहली तो बात कि कृष्ण ने योग्यता की बात ही न की, कृष्ण ने तो शक्यता की बात ही न की। कृष्ण ने कोई सवाल नहीं उठाया—इस सम्बन्ध में, कि तू पात्र होगा या नहीं—घड़ी आ गई या नहीं। कृष्ण ने कहा देख। यही अर्जुन अगर गीता में थोड़ी देर पहले पूछता, तो कृष्ण दिखाने को सरलता से राजी नहीं हो सकते थे। अर्जुन ने क्या अर्जित कर लिया है इस बीच—उस पर भी ख्याल कर लें, तो वो आपको भी सहयोगी हो जाए। तो जिस दिन आप उतना अर्जित कर लें, उस दिन आपको भी परमात्मा क्षण भर नहीं रुकता, उसी क्षण दिखा देता है। और ऐसा मत सोचिए कि अर्जुन के पास तो कृष्ण थे, आपके पास तो कोई भी नहीं है। हर अर्जुन के पास कृष्ण है और जब आप अर्जुन की श्रेणी में आ जाते हैं, तब आप पायेंगे कि कृष्ण आ जाते हैं। आपको जो भी चला रहा है, वो कृष्ण ही है। और न कभी आपने उससे पूछा है—न कभी

उसकी तरफ ध्यान दिया है न कभी उसकी सुनी है। अगर हम आदमी को एक रथ समझ लें, तो आपका मन अर्जुन है, और आपके भीतर जो साक्षी चैतन्य है—वो कृष्ण है। आपके भीतर जो मन को भी देखने वाला, वो जो विटनेस, वो जो मन को भी जानता है—उसका दृष्टा है—वो कृष्ण है। लेकिन आपने अर्थात मन ने कभी उस तरफ देखा नहीं। और अगर वहां से कोई आवाज भी आई तो सुना नहीं। जिस दिन भी आप तैयारी पूरी कर लेंगे कृष्ण को आप अपने निकट पायेंगे—सदा-सदा। इसलिए उसकी फिकर छोड़ें। वो कृष्ण की चिन्ता है—वो आपकी चिंता नहीं। आपमें क्या हो जाए कि आप कहें कि परमात्मा मुझे दिखा, और परमात्मा कहे कि देख और बीच में क्षण भर का भी अंतराल न हो।

अर्जुन ने इस बीच क्या कमाया, गंवाने से शुरू करें, क्योंकि इस अध्यात्म के जगत में कमाई गंवाने से शुरू होती है। अर्जुन ने अपने संदेह गंवाये हैं अब उसका कोई संदेह नहीं है। अब वो कहता है आप जो कहते हैं ऐसा ही है। ये मेरे लिए श्रद्धा बन गई। अब तक वो पूछ रहा था, संदेह कर रहा था, सवाल उठा रहा था। वो कहता था कि अगर ऐसा करूंगा तो ऐसा होगा, अगर युद्ध में जाऊंगा तो इतने लोग मरेंगे, और मर जायेंगे तो पाप लगेगा। इस द्वंद्व में अर्जुन पड़ा है—सोचता है क्या करूं, क्या न करूं, सब छोड़ दूं, विरक्त हो जाऊं—और कृष्ण जो भी कहते थे—उस पर दस नए सवाल उठाता था। अब उसके कोई सवाल न रहे, जिस दिन आपके भीतर कोई सवाल न रहे, आप समझना कि आपने कुछ कमाया—एक लिहाज से तो गंवाया क्योंकि हम समझते हैं कि सवाल ही हमारी संपत्ति है। मेरे पास लोग आते हैं—एक सवाल पूछते हैं—मैं जवाब भी नहीं दे पाया कि दूसरा सवाल पूछते हैं। मैं जवाब दे रहा हूं, इसकी उन्हें फिकर नहीं है, उन्हें पूछने की ही फिकर है। मैं पूछता हूं कि क्या जवाब दिया तो कहते हैं कि कुछ याद नहीं आता। उन्हें सवाल पूछना है, जैसे सवाल पूछना ही उनकी कुल जिन्दगी है। और अगर मैं उन्हें जवाब दूं तो उस जवाब में से फिर दस सवाल खोज कर वो कल आ जाते हैं। जवाब का केवल एक ही उपयोग करते हैं—नया सवाल बनाने के लिए। बाकी उनकी कोई उपयोगिता नहीं है। जैसे उन्होंने यही काम चुन रखा है। लेकिन क्या होगा उन सवालों से? और लाख सवाल भी आप पूछ सकते हों तो उन लाख सवाल से एक जवाब भी तो बनता नहीं। लाख सवाल बनते हैं—एक जवाब आता नहीं।

ग्रौर एक जवाब ग्रापके पास ग्रा जाए तो लाख सवाल तत्क्षण विलीन हो जाते हैं—हवा में खो जाते हैं। इसलिए जो व्यक्ति उत्तर की तलाश में है उसे पहले तो ग्रपने सवाल खोने की तैयारी दिखानी चाहिए। यह जरा कठिन लगेगा—क्योंकि हम कहेंगे कि ये बड़ी उल्टी बात ग्राप कह रहे हैं; उन्हीं का तो हमें उत्तर चाहिए। जिनको ग्राप छोड़ने को कह रहे हैं, ग्रगर उनको छोड़ देंगे तो उत्तर किस बात का।

बुद्ध के पास कोई जाए—तो वे यही कहते, कि तेरे सवालों का जवाब हम दे देंगे, कुछ दिन तू पहले सवालों के छोड़ने की फिकर कर। ग्रौर जिस दिन तू कहे कि ग्रब मेरे भीतर कोई सवाल नहीं है—उसी दिन तेरा जवाब दे देंगे। तो एक युवक मौलंकपुत्त बुद्ध के पास ग्राया, उसने पूछा ग्रभी क्या तकलीफ है ग्रापको उत्तर देने में। बुद्ध ने कहा : तू सवालों से इतना भरा है कि जवाब सुनेगा कौन ? ग्रौर सवाल तुझे इस तरह घेरे हुए हैं कि मेरा जवाब भीतर सुनेगा कौन—ग्रगर मेरा जवाब भीतर जाएगा तो तेरे सवाल मेरे जवाब को तोड़कर हजार सवाल खड़े कर लेंगे—ग्रौर कुछ भी नहीं होगा। हमारे चारों तरफ सवालों की एक दुनिया है। उसमें रंच भर भी जगह नहीं है भीतर, कुछ प्रवेश हो जाए। तो जो भी जवाब मिलता है, हमारे सवाल उस पर हमला कर देते हैं, उसे तोड़कर दस सवाल बना देते हैं—वापिस लौटा देते हैं कि ग्रब इनको पूछकर ग्राग्रो। ग्रौर भीतर हमारे कोई जवाब नहीं पहुंचता। हम बिना उत्तर के मर जाते हैं क्योंकि हम सवालों से भरे हुए जीते हैं।

ग्रर्जुन ग्रब ऐसी जगह पहुंच गया है, जहां उसके पास कोई सवाल नहीं है ग्रौर वह यह कहने को तैयार हो गया है कि तुम जो कहते हो वो सब ऐसा ही है ग्रौर ग्रब उसमें मुझे कुछ पूछना नहीं है। ग्रौर जब पूछना न हो तभी देखने की क्षमता पैदा होती है। जो पूछना चाहता है वो ग्रभी देखना नहीं चाहता सुनना चाहता है। फर्क समझ लें। जो पूछता है वो सुनना चाहता है कि कुछ कहो। प्रश्न का मतलब है कि कुछ कहो, कुछ सुनाग्रो, लेकिन सत्य कान के रास्ते से कभी भी गया नहीं है। ग्रब तक तो नहीं गया है, ग्रौर ग्रभी भी कोई उपाय नहीं दिखता कि सत्य कान के रास्ते से चला जाए। सत्य जब भी गया है ग्रांख के रास्ते से गया है, इसलिए सत्य के जानने वाले को हम कहते हैं दृष्टा। श्रोता नहीं—दृष्टा।

इसलिए जिन्होंने जान लिया है, उनके ज्ञान को हम कहते हैं दर्शन--श्रवण नहीं। देखा। इसलिए हम तीसरी आंख की खोज करते हैं--तीसरे कान की नहीं। कोई तीसरा कान है ही नहीं। पूछते हैं आप, जवाब तो आप चाहते हैं कि आपके कान में कुछ डाला जाय। सत्य इस रास्ते नहीं आता, पर ध्यान रहे कान का अनुभव सदा ही उधार रहता है। सदा ही उधार ! आंख का अनुभव ही अपना हो सकता है।

जब तक सवाल हैं तब तक आप उन लोगों की तलाश कर रहे हैं, जो आपके कानों को कचरे से भरते रहें। जिस दिन आपके पास कोई सवाल नहीं, उस दिन आप ऐसे आदमी की खोज करेंगे जो आपको दिखा दे।

तो अर्जुन का यह कहना कि जो आप कहते हैं, ऐसा ही है--खबर देता है, उसके सवाल गिर गए। दूसरी बात, जिंदगी में एक तो हमारे रोजमर्रा की उलझनें हैं, अर्जुन जहां से यात्रा शुरू किया, वो रोजमर्रा की उलझनें हैं। युद्ध का सवाल था—क्षत्री के लिए रोजमर्रा की उलझन है, मारना-नहीं मारना, नैतिक-अनैतिक, क्या करूं, क्या न करूं। क्या उचित है, क्या करना योग्य है—वो उसकी चिंतना है। सवाल तो कूद रहा था जिंदगी से, जिंदगी की सामान्य उलझन थी, हम सबको भी ये उलझन है कि ये करें कि न करें, इसका क्या फल होगा—पुण्य होगा–पाप होगा, न करें तो अच्छा है, कि करें तो अच्छा है। अंतिम परिणाम जन्मों-जन्मों में क्या होंगे, हम सबकी भी चिन्ता यही है, मांसाहार करें या न करें—पाप होगा कि पुण्य होगा। धन इकट्ठा करें कि न करें, क्योंकि कहीं कोई गरीब हो जाए, तो हम पुण्य कर रहे हैं कि पाप कर रहे हैं; क्या करें—क्या उचित–क्या अनुचित, यही उसकी चिंतना है। इसी से यात्रा शुरू हुई, अभी तक वह यही सोचता रहा था लेकिन अचानक इस बात को कहने के बाद कि अब जो आप कहते हैं वैसा ही है, ऐसी श्रद्धा का मुझमें जन्म हुआ, एक दूसरा ही सवाल उठा रहा है जो जीवन की उलझन का नहीं, जीवन के पार है। वो कह रहा है कि मैं विराट को देखना चाहता हूं—वो आयाम (डायमेंशन) अलग है। जब तक आप उन सवालों को पूछ रहे हैं जिसका सम्बन्ध इस जीवन के चारों तरफ के विस्तार से है, तब तक आप दर्शन की यात्रा नहीं कर सकते। जिस दिन आप इस उलझन के थोड़ा पार उठते हैं और परम जिज्ञासा करते हैं कि जीवन का स्वरूप क्या है, उस दिन ही दर्शन की बात सम्भव हो सकती है।

लोग आते हैं मेरे पास कहते हैं, मन में बड़ी अशांति रहती है। पूछो क्या कारण है अशांति का वो कहते हैं नौकरी नहीं है, किसी को बेटा नहीं होता है, किसी का धन्धा ठीक नहीं चलता —मन में बड़ी अशांति रहती है। उनके जितने भी कारण हैं अशांति के, उनमें एक भी कारण आध्यात्मिक नहीं है। नौकरी नहीं मिलती है—इसलिए अशांति है, आते हैं कि शायद ध्यान से शांति मिल जाए। अगर ध्यान से नौकरी मिलती होती तो शांति मिल सकती थी, ध्यान से नौकरी मिलेगी नहीं। अगर ध्यान से बच्चा पैदा हो सकता तो शायद शांति मिल जाती, अगर बच्चों के पैदा होने की वजह से शांति मिलती तो भी ठीक क्योंकि जिनको हैं—उनको बच्चों की वजह से अशांति है। लोग मेरे पास आते हैं वो कहते हैं कब इस नौकरी से छुटकारा होगा—इसकी वजह से अशांति है—रिटायर हो जाएं—विश्राम मिल जाए तो थोड़ा शांति से ध्यान करें। जो बेकार हैं वे कहते हैं नौकरी कैसे मिले ! जो नौकरी में हैं वे चाहते हैं बेकार कब हो जायें, तो थोड़ी शांति मिले।

लेकिन इनकी कोई भी जिज्ञासा आध्यात्मिक नहीं है। इनका प्रश्न जिन्दगी के साथ काम से उलझा हुआ है, इस रोजमर्रा के काम से सत्य के दर्शन का कोई भी संबंध नहीं है। ये जो पूछ रहे हैं, यह धार्मिक जिज्ञासा ही नहीं है। अब तक अर्जुन जो पूछ रहा था वो नैतिक जिज्ञासा थी, धार्मिक नहीं। अब जो वो जिज्ञासा कर रहा है वो धार्मिक है। अर्जुन भूल गया कि वो युद्ध में खड़ा है, इसको ख्याल में रखें। इस घड़ी आकर अर्जुन भूल पाया कि युद्ध में खड़ा है, इस घड़ी आकर वो भूल पाया कि फौजें सामने खड़ी हैं और मैं उनको मारने को आया हूं। इस घड़ी युद्ध विलीन हो गया, ये जो चारों तरफ कतार में बड़े-बड़े योद्धा खड़े थे, खो गए—जैसे स्वप्न में चले गए हों। वे नहीं हैं अब, अब सिर्फ दो ही रह गये इस बड़ी भीड़ में, अर्जुन और कृष्ण—आमने-सामने खड़े हैं, भीड़ तिरोहित हो गई। ऐसा नहीं कि भीड़ कहीं चली गई, भीड़ जहां है—वहीं है, पर अर्जुन के लिए अब इस भीड़ का कोई भी पता नहीं है, अर्जुन अब इस भीड़ के संबंध में नहीं सोच रहा, ये संसार हट गया। अब अर्जुन एक सवाल पूछ रहा है कि जो आपने कहा : अनंत, जिस विराट लीला की आपने बात कही, जिस अमृत अनंत अनंत धारा का आपने स्मरण दिलाया, मैं उसे देखना चाहता हूं। संसार खो गया, ये जिज्ञासा धर्म की जिज्ञासा है।

भारत का अनूठा ग्रंथ 'ब्रह्म-सूत्र' जिस वचन से शुरू होता है—वो बड़ा अद्भुत है। वो वचन है 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'—यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा, और यहां से शुरू होता है, इसके पहले कुछ है नहीं। जो किताबों को पकड़ते हैं, वे शायद सोचते हैं कि इसका पहला हिस्सा खो गया। अथातो ब्रह्म जिज्ञासा—इसका मतलब हुआ—यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा, इसका मतलब हुआ किताब अधूरी है, आगे का हिस्सा कहां है ? इस वाक्य से ऐसा ही लगता है कि यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा, तो अभी आगे की बात —इसमें पहले कोई और बात रही होगी, इसका पहला खंड खो गया है, नहीं तो 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' कहने की क्या जरूरत है ? इस किताब का कोई हिस्सा नहीं खो गया है, ये किताब पूरी है, ये वचन अधूरा लगता है—इसका कारण दूसरा है। जिससे ये कहा गया है और जिसने ये कहा है, आयाम की बदलाहट है। अब तक हो रही थी संसार की बकवास, अब गुरु ने कहा : अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, अब छोड़ ये बकवास, अब यहां से हम ब्रह्म की चर्चा शुरू करें। शिष्य ने यहां कोई सवाल उठाया होगा, जिससे आयाम बदल गया, जगत खो गया, स्वप्न खो गया और ब्रह्म वास्तविक लगने लगा। इसलिए यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा, अर्जुन को यहां युद्ध खो गया, संसार मिट गया। और उसने पूछा : अब मैं देखना चाहता हूं। क्या है अस्तित्व सीधा, प्रत्यक्ष, आमने-सामने, इसे देख लेना। अब मैं आपको भी बीच में लेने को तैयार नहीं हूं। जिस दिन शिष्य कहता है गुरू से कि अब आप भी हट जायें, सीधा ही देखना चाहता हूं, उस दिन गुरु के आनन्द का कोई पारावार नहीं है। जब तक शिष्य कहता है कि मैं तो आपके चरण ही पकड़े रहूंगा, चाहे आप नरक जायें तो मैं नरक चलूंगा, जहां-जहां आपका सहयोग मिल सकता है, वहीं चलूंगा तब तक गुरु पीड़ित रहता है। क्योंकि फिर एक मोह, एक नयी आसक्ति, नया उपद्रव, एक नया संसार बनता है। यहां अर्जुन क्या कह रहा है, बहुत राजनैतिक ढंग है—क्षत्री था, कुशल था—होशियार था। बड़े सूक्ष्म ढंग से कृष्ण से क्या कह रहा है—वो कह रहा है कि हटो तुम अब मुझे सीधा ही देख लेने दो। अब तुम्हारा रूप भी हटा लो, अब तुम्हारी आकृति भी विदा कर लो, अब तुम भी न हो जाओ। अब तुम्हारा दरवाजा भी हट जाए और मैं खुले आकाश को सीधा देख लूं। 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'—ऐसे ही क्षण में ब्रह्म की जिज्ञासा शुरू होती है। यहां संसार खो गया, इसीलिए शंकर ने बहुत-बहुत आग्रह करके कहा है कि

संसार माया है, स्वप्न है। इसलिए नहीं कि संसार स्वप्न है, बहुत वास्तविक है, अगर स्वप्न होता तो शंकर समझाते किसको, लिखते बोलते किसके लिए, स्वप्नों के पात्रों के लिए ? सिर फोड़ते उनके साथ, सिर खपाते उनके साथ, वाद-विवाद करते पूरे मुल्क में, भटकते—स्वप्न के पात्रों के साथ ! गांव-गांव खोजते, तब तो खुद ही पागल साबित होते !

संसार अगर सच में ही स्वप्न है तो शंकर को फिर बोलने का कोई कारण नहीं था। जब आप जाग जाते हैं सुबह और जानते हैं कि रात जो देखा वो स्वप्न था तब आप स्वप्न के पात्रों की कोई चर्चा करते हैं, उनको समझाते हैं कि सब झूठा था, जो देखा—वो होते ही नहीं—समझायेंगे कैसे ? नहीं, शंकर जब कहते हैं कि जगत स्वप्न है, तब इसका एक (डिवाइस) उपाय की तरह उपयोग करते हैं। वो ये कहते हैं कि अगर तुम जगत को स्वप्न देख पाओ थोड़ी देर के लिए भी तो तुम्हारी आंख उस तरफ हट सकती है जो जगत के पार है। जब तक तुम्हें जगत सत्य मालूम पड़ता है, तब तक तुम किसी और सत्य की खोज में निकलोगे ही कैसे। जब तक तुम्हारे चारों तरफ जिसने तुम्हें घेरा है वो तुम्हें इतना वास्तविक मालूम पड़ता है कि जीवन उसी में लगा दें—इसी दुकान में—दो-दो पैसे इकट्ठे करने में, इसी मकान को खड़ा करने में, इन्हीं बच्चों को पालने-पोसने में—इतनी वास्तविकता लगती है कि अपने जीवन को तिरोहित कर दें, समाप्त कर दें, शहीद हो जायें, तब तक उस तरफ आंख कैसे उठाओगे जो सत्य है।

इसलिए अगर यह बात ख्याल में आ जाए, कि स्वप्न है घड़ी भर को भी—ये बोध में गहरा उतर जाये कि चारों तरफ जो है—स्वप्न है तो खोज शुरू हो जाती है कि सत्य क्या है ? सत्य की खोज हो सके इसलिए शंकर ने बड़े अनुग्रह से समझाया है लोगों को कि जगत स्वप्न है। लेकिन लोग बड़े मजेदार हैं, वो इस पर बैठकर विवाद करते हैं कि स्वप्न है या नहीं। स्वप्न है तो किस प्रकार का स्वप्न है—और स्वप्न है तो किसको आ रहा है ? और स्वप्न है तो ब्रह्म से स्वप्न का क्या संबंध ? ये स्वप्न ब्रह्म को आ रहा है कि आत्मा को आ रहा है ? अगर ब्रह्म को आ रहा है तो वास्तविक हो गया और अगर आत्मा को आ रहा है तो आत्मा को शुरुआत इसकी कैसे हुई ? लोग इसकी चर्चा में लग जाते हैं।

अगर शंकर हों तो वो अपना सिर पीटें, उन्होंने कहा था कि थोड़ी देर के लिए तुम अपने इस उपद्रव को—आंख बन्द कर सको, तो एक उपाय था—कि तुम्हें कहा कि एक स्वप्न है, थोड़ा और तरफ भी देखो—आंख को थोड़ा मुक्त करो यहां से, देखने की क्षमता यहां से थोड़ी हटे तो नई यात्रा पर निकल जाए, और निश्चित हो जो एक नई यात्रा पर निकल जाता है, उसे लौटकर ये जगत स्वप्न मालूम पड़ता है। लेकिन स्वप्न इसलिए मालूम पड़ता है कि अब सापेक्ष रूप से उसने जो जाना है वो इतना विराटतर सत्य है कि संसार बिल्कुल फीका और मुर्दा हो गया है। उसे ठीक वैसे ही स्वप्न हो जाता है—जैसे आपने कागज के फूल देखे हों और आपको असली फूल देखने को मिल जायें। और तब आप कहें कि ये कागज के फूल हैं—लेकिन जिन्होंने कागज के फूल ही देखे हैं, उनको इसमें कुछ भी अर्थ मालूम नहीं पड़ेगा। क्योंकि फूल का मतलब ही कागज का फूल होता है और कोई फूल होता नहीं। जिस दिन हम विराट को देख पाते हैं उस दिन संसार स्वप्न जैसा फीका, मुर्दा बेजान, अर्थहीन मालूम पड़ने लगता है। वो सापेक्ष दृष्टि है, हमने कुछ और जान लिया, जैसे कोई सूरज को देख ले और घर में आकर मिट्टी के दिए को देखकर कहे कि ये बिल्कुल अंधेरा है। अंधेरा है ही, क्योंकि जो घर में बैठा है उसके लिये दिया ही सूर्य है, लेकिन जो सूरज को देखकर लौटा है, दिए की ज्योति दिखाई भी नहीं पड़ेगी। इतने विराट को जिसने जाना है, दिए की ज्योति उसकी आंखों में कहीं पकड़ में ही नहीं आयेगी। वो कहेगा दिया कहीं है ही नहीं, तुम अंधेरे में बैठे हो, ये सूर्य की तुलना में। सब शब्द सापेक्ष हैं, अर्जुन को जिस क्षण ये बाहर का सारा जगत् कृष्ण की तल्लीनता में—स्वप्नवत हो गया वो भूल गया कि मैं कहां खड़ा हूं—कभी आप भूले हैं—एकाध क्षण को भी कि कहां आप खड़े हैं, कभी आप भूले हैं एकाध क्षण को—अपनी पत्नी को, बच्चे को, घर को, दुकान को। कभी एकाध क्षण को ऐसा हुआ है कि चौंक के ख्याल हुआ हो कि 'मैं कौन हूं'—कहां खड़ा हूं—क्या है मेरे चारों तरफ। अगर ऐसा कोई क्षण आपको आ जाय तो समझना कि इसके बाद 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा', उस क्षण के बाद ब्रह्म सूत्र शुरू होता है। लेकिन वो क्षण हमें आता नहीं—हमें सब पता है कि मैं कौन हूं—नाम का पता है, घर का पता है—अपने बैंक बैलेंस का पता है—कौन कहता है कि नहीं है!

अर्जुन इस घड़ी में ऐसी जगह आ गया है, जहां उसे कुछ भी पता नहीं रहा। वो भूल गया कि युद्ध होने को है, थोड़ी देर में शंख बजेंगे और युद्ध में कूद जाना पड़ेगा। वो नीति-अनीति, वो क्षुद्र सब प्रश्न खो गए। अभी थोड़ी देर पहले वो बड़े महत्वपूर्ण मालूम पड़ते थे, वो मरना-जीना, अपने-पराये, वो सब खो गए। अब उसके लिए एक ही बात महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है कि ये अस्तित्व क्या है—एक्जिस्टेंस—ये होना ही क्या है। तो कृष्ण को कहता है तुम भी हट जाओ। मुझे आमने-सामने सीधा हो जाने दो। मैं एक दफे सीधा ही देख लूं—क्या है? ये योग्यता उसने अर्जित की गीता के इस क्षण तक। जब जीवन की क्षुद्रता प्रश्न नहीं बनती, तभी जीवन का विराट जिज्ञासा बनता है। जिसने हमें चारों तरफ घेर रखा है अभी और यहां समय के घेरे में, जब अचानक हमें उसका पता भी नहीं चलता, तो जो समय के पार है, हमें आच्छादित कर लेता है। जब क्षुद्र को हम भूलते हैं तो विराट की स्मृति आती है। सब उपाय धर्म के क्षुद्र को भूलने के उपाय हैं। कहो उसे प्रार्थना, कहो ध्यान, कहो पूजा, कहो जप, कोई भी नाम देना हो—दो। ये सब क्षुद्र को भूलने के उपाय हैं। और क्षुद्र भूल जाय तो हम उस किनारे पर खड़े हो जाते हैं जहां से नौका विराट में छोड़ी जा सके। थोड़ी देर को भी क्षुद्र भूल जाय तो कुछ हो सकता है--कोई नये तल पर हमारा होना—कोई नई दृष्टि, कोई नया हृदय हममें धड़क सकता है। कोई नया स्वर जो भीतर निरंतर बजता रहा है—सनातन लेकिन हमारे लिए नया है क्योंकि हम पहली दफे सुनेंगे, चारों तरफ की भीड़, आवाज, शोरगुल बन्द हो जाए क्षण भर को तो भीतर की वो धीमी-सी आवाज, सनातन आवाज, हमें सुनाई पड़ने लगती है। अर्जुन भूल गया—संसार का विस्मरण—युद्ध का विस्मरण—परिस्थिति का विस्मरण--उसके लिए ब्रह्म की जिज्ञासा बन गई। और कृष्ण ने उससे एक बात भी नहीं कही—कहा कि देख, ये देखना सोच लेने जैसा है, कि क्या अर्जुन को अब कुछ करना नहीं है, कृष्ण कहते हैं देख और अर्जुन देखना शुरू कर देता है। क्या हुआ होगा, ये बहुत बारीक है – और जो अध्यात्म में गहरे उतरते हैं, उन्हें समझ लेने जैसा है, या उतरना चाहते हैं कभी तो इसे संभाल-संभाल के रख लेने जैसा है। वो जो तीसरी आंख है, दो प्रकार से सक्रिय हो सकती है। या तो साधक चेष्टापूर्वक अपनी दोनों आंखों की ज्योति को भीतर खींच ले, आंख को बन्द करके, वर्षों की लम्बी साधना है। आंखों को निरज्योति करने की,

क्योंकि आंख से हमारी जो चेतना बह रही है बाहर, उसे आंख बन्द करके भीतर खींच लेना है। इसको कबीर ने आँख को उल्टा कर लेना कहा है। मतलब है कि जो धारा बाहर बह रही थी वो भीतर बहने लगे। आपने कृष्ण की प्रेयसी राधा का नाम सुना है, आपको ख्याल न होगा, वो धारा का उल्टा शब्द है।

कृष्ण के समय के जो भी शास्त्र हैं, उनमें राधा का कोई भी उल्लेख नहीं है। राधा के नाम का भी कोई जिक्र नहीं है। बहुत बाद की किताबों में राधा का उल्लेख है, जिनने उल्लेख शुरू किया वो बड़े होशियार लोग थे। उन्होंने इस प्रतीक में एक बड़ा रहस्य छुपा कर रखा। उन्होंने राधा की मूर्तियां बना लीं और फिर लोग कृष्ण और राधा बनके मंच पर रास-लीला करने लगे। राधा एक यौगिक प्रक्रिया है, वो जो जीवन की धारा बाहर की तरफ बह रही है, जिस दिन उल्टी हो जाती है, उस धारा का नाम राधा हो जाता है – सिर्फ शब्द को उल्टा कर देने से। वो जो आंख से हमारी जीवन धारा बाहर जा रही है अब भीतर आने लगती है तो राधा हो जाती है। और भीतर हमारे छिपा है कृष्ण – मैंने कहा : साक्षी। वो साक्षी जो हमारे भीतर छिपा है; जब हमारी जीवन धारा उसकी राधा बन जाती है, उसके चारों तरफ नाचने लगती है, बाहर नहीं जाती – भीतर, और रास शुरू हो जाता है – उस रास की बात है और हम नौटंकी करते हैं, मंच वगैरह सजा के। उपद्रव करने के बहुत उपाय हैं, और आदमी हर जगह से उपद्रव खोज लेता है, और अपने को भरमा लेता है, सोचता है बात खतम हो गई।

राधा हमारी जीवन धारा का नाम है जो उल्टी हो जाय – वापिस लौटने लगे स्रोत की तरफ, अभी जा रही है बाहर की तरफ, जब जाने लगे भीतर की तरफ, अन्तर्यात्रा पर हो जाय, तब जो रास भीतर घटित होता है – परम रास – वो जो परम जीवन का अनुभव और आनन्द, वो जो नृत्य है भीतर, उसकी बात है।

तो एक उपाय है कि हम चेष्टा से, श्रम से, योग से, तंत्र से, साधन से, विधि से, सारी चेतना को भीतर खींच लें : एक उपाय है, साधक का—योगी का। एक दूसरा उपाय है भक्त का, समर्पित होने वाले का—जो समर्पण कर दे। जिस व्यक्ति की अंतर्धारा भीतर की तरफ दौड़ रही हो—

उसको समर्पण कर दे। तो जैसे अगर आप एक चुंबक के पास एक साधारण लोहे का टुकड़ा रख दें तो चुंबक की जो चुंबकीय धारा है—उससे लोहे का टुकड़ा भी चुम्बक बन जाता है। ठीक वैसे ही अगर कोई व्यक्ति उस व्यक्ति की तरफ अपने को पूरा समर्पित कर दे, जिसकी कि धारा भीतर की तरफ जा रही है तो तत्क्षण उसकी धारा भी उल्टी होकर बहने लगती है। अर्जुन ने न तो कोई साधना की कभी, अभी साधना करने का उपाय भी नहीं, अभी तो चर्चा ही चलती थी और अचानक अर्जुन ने कहा कि अगर आप समझें मुझे योग्य, समझें शक्य, अगर ये संभव हो, आपकी मर्जी हो तो दिखा दें। और कृष्ण ने कहा : देख। इन दोनों शब्दों के बीच जो घटना घटी है—वो वो मेगनाटाइज जैसी है, वो अर्जुन का ये समर्पण भाव कि आप जो कहते हैं ठीक ही है, मेरा कोई विवाद नहीं, अब मेरा कोई विरोध नहीं—अब मेरा कोई असहयोग नहीं है, अब मैं सहयोग के लिए राजी हूं। अब मेरी समग्र स्वीकृति है—कृष्ण ने कहा : देख। उन दोनों के बीच जो घटना घटी, उसका कोई उल्लेख गीता में नहीं है. हो भी नहीं सकता; इसका क्या उल्लेख हो सकता है ? वो घटना जो घटी तो समर्पण के साथ ही वो जो कृष्ण के भीतर बैठी हुई धारा थी, अर्जुन की धारा उसके साथ भीतर की तरफ लौटी। कृष्ण खो गए, और अर्जुन ने देखना शुरू कर दिया।

इस देखने की बात हम कल करेंगे। लेकिन पांच मिनिट उठेंगे नहीं, ५ मिनिट कीर्त्तन करें, ये मेरा प्रसाद है— कोई भी उठेगा नहीं—अपनी जगह बैठकर ताली बजायें, अपनी जगह बैठकर कीर्त्तन में सहयोगी हों।

[नोट : सुविज्ञ प्रेमी साधकों को विदित ही है कि प्रत्येक प्रवचन के बाद भगवान श्री द्वारा प्रेरित नव-संन्यास के अन्तर्गत दीक्षित संन्यासीगण कीर्त्तन की भगवत् लहरियों में भगवान श्री के सान्निध्य में खो जाते हैं।]

● संकलन : *अरविन्दकुमार*, जबलपुर

The International Spiritual Magazine

SANNYAS

A Bimonthly Magazine of the spoken words of wisdom of an Enlightened Master

Inspired By : Bhagwan Shree RAJNEESH
An Enlightened One of modern times.

Annual Subscription Rs. 18/-

[For Subscription, Send yeur M.O.-Cheque To : J. D. Lashkari, Sannyas, C/o. Selprint, A-Z Industrial Estate, Fergusson Rood, Lower Parel, Bombay-13.]

भगवान श्री रजनीश की अमृत-वाणी की एक नवीन हिन्दी मासिक पत्रिका

★ आ नं दि नी ★

संपादक : स्वामी चैतन्य कीर्ति

२६३, माडल ग्राम, लुधियाना (पंजाब)

मूल्य—एक प्रति : 9 रुपया, वार्षिक : 90 रुपये

सदस्यता लेकर लाभ उठावें ।

अनुदान-सूची :

१२. श्रीमती उर्मिला मिश्र २१।-
देवी मंडप रोड, पो. झुमरीतलैया
जिला : हजारीबाग

१३. श्री एन. एस. अग्रवाल एडवोकेट
अमरावती १०।-

१४. श्री राधेश्याम मोदानी १२।-
दी वेस्ट कोस्ट पेपर मिल्स लि०,
डांडेली (मैसूर)

१५. श्री के. एल. शर्मा १५।-
१९२, बसंत एवेन्यु
रेस कोर्स रोड, अमृतसर (पं.)

१६. श्री नवीनचंद पी. गोसलिया
मैनेजर : देना बैंक, चोरवाड
जिला : जूनागढ़ ११।-

१७. श्री फूलजी भाई गुमान जी भाई
चौधरी, मु० जीरा,
ता० महेसाणा, पो० मीठा
(नार्थ गुजरात) ५।-

१८. श्री कनुभाई फूलजी भाई चौधरी
मु० जीरा, ता० महेसाणा
पो० मीठा (ना. गु.) ५।-

१९. श्री स्वामी आनंद गौतम ५१।-
जीवन जागृति केन्द्र, इन्दौर

२०. साधु योग विधिराज २।-
बनियों का मोहल्ला,
मु० फरीद कोट, भटिंडा (पं०)

२१. डा० अरविन्द वकील २५।-
वकील क्लीनिक
वेरावल–२

२२. सुश्री गोपी २००।-
जबलपुर

कुल योग : ५४७।-

प्रभु - पुजारिन

होकर पुजारिन मैं प्रभु तेरे द्वार पे आयी हूं
तेरी दिवानी बनकर मैं तेरे चरणों में आयी हूं
मैं फिरती मारी-मारी तुम्हारे वास्ते भगवन्
तुम्हारे वास्ते भगवन्,
मुझे अब शरण में ले लो मैं खुद को देने आयी हूं ॥
अभी तक याद है मुझको तुम्हारी मधुर वाणी वो,
तुम्हारी मीठी बातें वो,
उसी गुजरे जमाने की मैं वाणी सुनने आयी हूं ॥
दुनिया में नहीं कोई ऐसा मैं जिसको दर्द दिखलाऊं,
मैं जिसको दर्द बतलाऊं ?
आज करी है करुणा मुझ पर सहारा लेने आयी हूं ॥
यदि तुम मांग लो मुझको निज को हंसके दे दूंगी,
मैं गाते-हंसते दे दूंगी,
तुम्हीं हो, हो मेरे तुम ही, कहेंगे जब तुम्हारी हूं
अहो रजनीश की मीरा अहर्निश गुनगुनाती है,
मधुर आवाज देती है,
मुझे तुम भूल मत जाना यही मैं कहने आयी हूं ॥

• *मा योग मीरा*
जूनागढ़

युक्रान्द
अगस्त १९७३